मूल्य : बीस रुपये (20.00)

संस्करण : 1989 © जयप्रकाश भारती
राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली, द्वारा प्रकाशित
JHILMIL KATHAYEN (Stories for Children) by Jai Prakash Bharti
ISBN 81-7028-058-3



झिलमिल कथाएं



जयप्रकाश भारती



राजपाल एण्ड सन्ज़

आओ, बात करें...

ये छोटी-छोटी कहानियां हैं। 'नंदन' पत्रिका के पाठकों के लिए इन्हें लिखता गया। लाखों बच्चों ने ही नहीं, बड़े पाठकों ने भी इन्हें पसंद किया। मेरे पास न जाने कितने पत्र आते रहे। पाठक चाहते थे कि इनका संकलन हो।

कोई भी कहानी शुरू कर दें तो अंत तक पढ़े बिना नहीं रह सकते। ये नागरिकता, नैतिकता और सद्‌गुणों के अंकुर हमारे भीतर रोपती हैं। इस तरह बोध-कथाएं भी इन्हें कह सकते हैं।

मिठाई जैसी इन कथाओं को पढ़ते हुए आपको रस मिलेगा। जीवन की राह पर दीपों की तरह भी ये झिलमिल करेंगी।

—जयप्रकाश भारती

कहानी-क्रम

ले चल कहीं और	9		
मोर मचाते शोर	12		
बंटवारा नहीं होगा	15		
गोल-गोल नगर	17		
रसगुल्ले बरसे	20	तालियां ही तालियां	74
राजा की कमाई	23	कोई नहीं बोला	78
लाजवाब इत्र	26	आप से बढ़कर कौन	80
रोशनी की लकीर	30	अधिक कीमत नहीं	82
दादी का पोता	32	खन खन खनक	84
अनोखा उपहार	34	खड़े रहे अड़े रहे	86
ना धन मेरा	36	कुछ न हो सब कुछ	89
चिकने कंकड़	39	शहर की महर	91
चांदी का कटोरा	41	झूठ का अंगार	93
कबाड़िया सेठ	43	पंडित चुप	96
गोली कहां लगी	46	नौजवान बिगड़ उठे	98
सेठ के मोदक	49	काला घोड़ा सफेद घोड़ा	100
तेली का बैल	52	तालाब भर गया	103
मिठाई का पहाड़	55	अशुभ नहीं शुभ	105
लालटेन वाले बाबा	57	सुनहरी हिरन	108
बंधन खोल दिए	59	खेल खेल में	112
कल फिर आना	62	काम बढ़ावा कौन	115
मेरा सब कुछ	64	खोटी मोटी	116
बूढ़ा नहीं सीखता	66	शहद लगी घास	121
तीन सहेलियां बगिया में	69	पैसा नहीं चढ़ाया	124
रानी खुश महारानी खुश	72	रथ राख बना	126
		कबूतर का घोंसला	128
		बरस रहे फूल	131
		कमल की भेंट	133

ले चल कहीं और

कपास का डोडा यानी फूल—फूला-फूला, सफेद-सफेद। हवा चली, उड़ चला डोडा भी। सैर करने को, दुनिया देखने को। जा पहुंचा नए देश में !···अरे, कैसी तो सुहानी जगह है। वह खेत, वह धरती तो कुछ भी नहीं, जहां मैं जन्मा था। मैं अब यहीं रहूंगा। संसार में सबसे अच्छी जगह तो यही है। एक दिन, दो दिन, तीन दिन—समय तेजी से निकल गया। वहां धूल भरी तेज आंधी चली, चलती रही। डोडा ऊब गया, वहां एक ओर बैठे-बैठे।

उसने सोचा—"अब यहां न रहूंगा। यह भी कोई जगह है। मैं कहीं और चलता हूं।"

फिर हवा बदली। डोडे को मौका मिला। वह वहां से उड़न-छू हो लिया। खुद को उड़ता देखा, डोडा खुश हुआ। बिना पंखों के आकाश में उड़ान भरना। वह उड़ता गया, उड़ता गया। जा पहुंचा एक बरगद के ऊपर। हवा ने वहीं छोड़ दिया उसे। बरगद की टहनियों में उलझ गया। शाम ढलने लगी थी। थके-मांदे पक्षी रैन-बसेरे के लिए बरगद पर उतरने लगे। अपनी-अपनी बोलियों में बतियाने-चहचहाने लगे। यह देख, डोडा खुशी से फूला न समाया।

उस खेत के पास, जिसमें वह पैदा हुआ था, कोई पेड़ न था। पक्षियों का कलरव पहली बार सुना था उसने। सोचने लगा—"वाह, कितनी अच्छी जगह है यह।" सोचते-सोचते उसे नींद आ गई।

सुबह नींद टूटी। देखकर परेशान हो उठा। पक्षी दाना चुगने चले गए थे। वह अकेला उदास हो गया। उसका मन उचट गया। तभी हवा का झोंका आया। कपास का डोडा फिर से उड़ चला। कुछ देर बाद नदी के किनारे जा उतरा। उस दिन कोई पर्व था—स्नान करने वालों की भीड़ लगी थी। कुछ लोग गा-बजा रहे थे। चहल-पहल देखकर कपास का डोडा स्वयं से बोला—"अब बनी बात। यहां रहने का अपना ही आनंद है। नदी की कलकल बहती धारा। गोता लगाते भक्त। मैं तो यहीं रहूंगा।"

पर अगले ही दिन वहां सूना-सूना हो गया। कपास के डोडे की खुशी जाती रही। रेत की परत में दब गया बेचारा। किसी तरह आंधी के एक झोंके ने उसे फिर सहारा दिया। उड़ चला। सोच रहा था—"अच्छा ही हुआ। भला, वह भी कोई रहने की जगह थी।"

उड़ता-उड़ता डोडा एक शहर के ऊपर से गुजरा। हवा की गति कुछ कम हुई, तो राजमहल के प्रांगण में जा गिरा। महल की शोभा देखकर वह चकित रह गया। सोचने लगा, "कितनी अच्छी जगह है।" हवा का झोंका आया, तो संगमरमर के फर्श पर इधर-से-उधर लुढकने लगा। बड़ा आनंद आ रहा था उसे। तभी एक नौकर की नजर उस पर पड़ गई। "यह कचरा कहां से आ गया।"—कहकर उसने

डोडे को उठाकर बाहर फेंक दिया। बड़ा दुःखी हुआ इस अपमान से बेचारा। मगर ज्यादा देर नहीं। हवा फिर उसे ले उड़ी।

इस तरह उड़ता-गिरता वह दुनिया में घूमा, मगर उसे कहीं चैन नहीं मिला। कुछ समय तक कोई जगह अच्छी लगती, पर फिर अपने साथियों, बंधु-बांधवों की याद बेचैन कर देती। अब वह घूम-घूमकर थक चुका था।

एक दिन हवा उसे फिर उड़ा ले चली, तो उसने कह ही दिया—"हवा बहन, मुझे मेरे देश पहुंचा दे, जहां मैंने जन्म लिया था। मेरी धरती ही अच्छी है।"

मोर मचाते शोर

लो, आषाढ़ फिर आ गया। मोर कुहुकने लगे। अपने रंग-बिरंगे पंख फैला-फैलाकर नाचने लगे। ससुराल में बैठी नई दुलहन को मायके की याद सताने लगी। वह गाने लगी—"ओ प्यारे मोर, तुम्हारी चोंच सोने से मढ़वा दूंगी। उड़कर जाना, मेरा संदेश पिता को देना। भाई से कहना—बैलगाड़ी जुतवाकर आ जाए। अपनी बहन को लिवा ले जाने को।"

मोर का देश है भारत। न जाने उसके कितने गीत, कितनी कथाएं हैं, मोर के पंख शुभ माने जाते हैं। मोर पंख जहां भी मिले, उठा लिये। किताब में पंख रखने का शौक पुराना है।

बोपोलूची की कथा किसने नहीं सुनी। वह अपनी सखियों के संग कुएं पर पानी भर रही थी। सब सखियां पानी भरती जातीं और अपनी-अपनी कहती जातीं बारी-बारी से। किसी सखी ने बताया—उसका चाचा आने वाला है। किसी ने कहा—भाई आने वाला है। वे क्या-क्या लेकर आएंगे, यह भी उन्होंने गिना डाला।

बेचारी बोपोलूची अनाथ थी। पर थी बहुत सुंदर। पहले तो चुपचाप सुनती रही। फिर वह भी चिहुंक उठी—"मेरे चाचा भी उपहार लेकर आने वाले हैं।"



पास ही एक बनजारा छिपा था। वह सबकी बात सुन रहा था। बोपोलूची को देख, उस पर मोहित हो उठा। अगले ही दिन उसके घर जा पहुंचा। बनजारे ने उसे कुछ उपहार दिए। फिर बोला—"मैं तुम्हारा चाचा हूं। अपने घर लिवाने आया हूं।"

बोपोलूची तो फूली नहीं समाई। झट तैयार हो गई। बनजारे के साथ-साथ चल दी। राह में एक मोर मिला। बोपोलूची से बोला—"तुम किसके साथ जा रही हो? यह तुम्हारा चाचा नहीं, ठग है, ठग।"

यह सुन, बनजारे ने कहा—"अरी, बोपोलूची! तुम इसकी बात पर ध्यान न दो। यह पक्षी है। इसे क्या पता!"

बोपोलूची और बनजारा आगे बढ़े। एक मोर और मिला। उसने भी बोपोलूची को चेतावनी दी। इस पर बनजारा बोला—"इस देश में मोर यों ही शोर मचाया करते हैं।"

बोपोलूची चलती गई बनजारे के साथ। पर उसके मन में शंका तो हो ही गई थी। फिर बनजारे के घर पहुंच, उसे धता बताकर, बोपोलूची साफ बच गई। वह अपने साथ एक मोर भी लेती आई। घर में उसे प्रेमपूर्वक और आदर से पालने लगी।

कितनी ही कथाओं में मोर बोलता है आदमी की तरह। रानियां महलों में मोर पाला करती थीं। महल में मोर रहेगा, तो संकट से बचे रहेंगे, ऐसा सोचा करतीं।

मोर और मानव की मित्रता पुरानी है। मोर ही क्यों, सभी पक्षी हमारे मित्र हैं। वे मित्रता निभाते रहे, हम उन्हें मारते रहे।

बंटवारा नहीं होगा

दो भाई थे। अचानक एक दिन पिता चल बसे। भाइयों में बंटवारे की बात चली—"यह तू ले, वह मैं लूं, वह मैं लूंगा, यह तू ले ले।" आए दिन दोनों बैठे सूची बनाते, पर ऐसी सूची न बना सके, जो दोनों को ठीक लगे। जैसे-तैसे बंटवारे का मामला सुलझने लगा, तो एक खरल पर आकर उलझ गया।

"पिता जी अपने लिए इस खरल में दवाइयां घुटवाते थे। उसे तो मैं ही अपने पास रखूंगा।" बड़े ने कहा।

छोटा तुनककर बोला—"यह तो कभी हो नहीं सकता। दवाइयां घोट-घोटकर तो उन्हें मैं ही देता था। उनकी निशानी के तौर पर मैं इसे रखूंगा।"

बात बढ़ गयी और सारा किया-धरा चौपट। अब पंचों से फैसला कराना तय हुआ। पंच चुने गए। उन्होंने सबसे पहले दोनों को घर से बाहर निकाला और दो ताले द्वार पर डाल दिये। तय हुआ—बंटवारा दो दिन बाद करेंगे।

दोनों में से अब कोई भाई अकेला भीतर नहीं जा सकता था। पर हमारे समाज में वे भी तो हैं, जो द्वार से घर में नहीं घुसते। रात हुई, चोर दीवार लांघकर भीतर घुसे और सारा माल समेटकर गायब हो गये।

दो दिन बाद घर खोला गया। अब बांटने को धन बचा ही नहीं था। दोनों भाई खड़े-खड़े हाथ मल रहे थे। एक कोने में पड़ा खरल उन्हें चिढ़ा रहा था।

दोनों भाइयों ने पंचों के हाथ जोड़े। कहा—"अब बंटवारा नहीं होगा। हम साथ-साथ ही रहेंगे।"

खरल के झगड़े ने धन गंवा दिया। मेल से रहना और प्रेम बांटना ही सुखी जीवन बिताने का सूत्र है।

गोल-गोल नगर

बर्फ, बर्फ और बर्फ !

सूरज चमके तो चमकता ही रहे—रात में भी दिन जैसा। रात हो तो खत्म ही होने का नाम न ले।

दक्षिण ध्रुव के बारे में कुछ-न-कुछ हम जानते हैं। भारत के वैज्ञानिकों ने भी वहां खोजबीन की है। पर कभी वहां बड़ा देश था। आज की तरह बर्फ-ही-बर्फ न थी। लोग सुख से रहते थे। अनेक नगर थे। एक बड़े नगर की कथा है यह।

वह नगर गोल-गोल था। मकान भी गोल बनाए जाते। अधिक भाग-दौड़ कोई न करता। वहां रहने वाले सीधे-सादे थे। उनकी जरूरतें बहुत कम थीं।

वे अधिकतर पूजा-ध्यान में ही लगे रहते। लोग बहुत ही कम बोलते थे। हर कोई अपने में खोया रहता। उनका स्वभाव ही बन गया था चुप रहने का। न किसी से कुछ कहना, न किसी की सुनना। जो जहां बैठा है, बैठा है।

उस बड़े नगर में एक आदमी अलग तरह का था। नाम था अविनीत वर्मा। यह अक्सर भागता-दौड़ता दिखाई दिया करता। कोई उससे किसी काम को कहता, तो वह मान लेता। वह सभी के काम कर देता। किसी का पशु

खो गया, तो अविनीत वर्मा उसे खोज लाएगा। किसी का बालक बीमार है—वह चिकित्सक को ले आएगा। लेकिन रूखा भी बहुत था अविनीत वर्मा।

किसी को भी वह दो टका-सा उत्तर देता—"नहीं, यह काम तुम स्वयं करो। मुझे फुर्सत नहीं है।" अविनीत वर्मा वही करता, जो उसे ठीक लगता। जिस समय जो काम उसे जरूरी मालूम हो, उसके अलावा उसे किसी की परवाह नहीं थी।

किसी काम के बदले, कोई धन्यवाद करे, तो उसकी खैर नहीं। अविनीत वर्मा उसे बुरी तरह झिड़क देता। किसी का वह काम करे, पर बदले में कुछ चाह न रखता। कोई मर जाता, तो वह दुखी न होता। उसकी आंखों में आंसू किसी ने कभी न देखे।

रात का समय था। अचानक अविनीत वर्मा चौंक उठा। नींद उचट गई। न जाने घर के बाहर क्या था! उसने गोल घर का दरवाजा खोला। दरवाजे के बाहर तो बर्फ का अंधड़ था। ऐसा घिरा उसमें कि कुछ दिखाई न दिया। घर के भीतर लौटकर न जा सका। इस मुसीबत में उसकी आंखों में आंसू आए पर वे वहीं जम गए।

कुछ ही घंटों में दूर-दूर तक सब कुछ सफेद हो गया—बर्फ-ही-बर्फ। न कहीं कोई राह दिखी, न कोई मकान। अविनीत वर्मा कमर तक बर्फ में धंस गया। उसने आंखें बन्द कर लीं। शरीर की सुध उसे न रही।

वह सोचने लगा—"यहां के लोग धार्मिक थे। फिर यहां ऐसी विपत्ति क्यों आ गई?"

समय बीता। कोई आवाज उसे सुनाई दी—"आइए, आइए!"

वह वहां आ गया, कैसे आ गया। यह तो सब कुछ नया-नया है।

"यह धरती नहीं, यमलोक है। अविनीत वर्मा!" चित्रगुप्त ने कहा। "चलो, तुम्हें धर्मराज से मिला दूं। तुम कुछ जानना चाहते थे?"

तभी धर्मराज उसके सामने थे। अविनीत ने हाथ जोड़े, खट से प्रश्न किया—"वह पूरा देश बर्फ में समा गया। वहां के लोग तो धर्म को मानते थे, फिर भी···"

"मनमानी करना धर्म नहीं है भद्र! वे अपने लिए जीते थे। दूसरों के लिए कुछ करने से पुण्य मिलता है। तुम उसी के बल पर आज यहां पहुंच सके हो।" धर्मराज बोले।

रसगुल्ले बरसे

एक बार बड़ा गजब हुआ। शहर के ऊपर उड़ता-उड़ाता एक बादल आ गया—अनोखा बादल। उसके नीचे जो सोचो, वही मिले। उस शहर के लोग मिठाई के शौकीन थे। बस, बादल ने एक दिन खूब रसगुल्ले बरसाये। बच्चों ने, बड़ों ने, बूढ़ों ने खूब खाए। खाए ही नहीं, जो भी बर्तन मिला, उसी में भर-भरकर रख लिये।

दूसरे दिन क्या हुआ—संदेश बरसने लगे। वे भी सबने भरपेट खाए। फिर रसगुल्लों को फेंकने लगे। सभी बर्तनों में संदेश भरने लगे।

अरे, तीसरे दिन तो राजभोग बरस पड़े। भला, राजभोग के सामने रसगुल्ले या संदेश की क्या बिसात। तो किसी ने बीस खाए, किसी ने पचास-साठ भी। उन्हें इकट्ठा करने में भी होड़ लग गई।

अब रोज ही कोई-न-कोई बढ़िया मिठाई बरसने लगी। केसर-पिस्ते की बर्फी क्या बरसी—चारों ओर हरा-हरा, पीला-पीला।

एक दिन, दो दिन, दस दिन और फिर महीना हो गया यों ही। शहर में साग-सब्जी, फल सबकी बिक्री ठप्प पड़ गई। लोगों ने काम-काज करना छोड़ दिया। भरपेट

मिठाई खाओ और ठाठ से मौज करो। काम करने की जरूरत भी क्या थी।

लेकिन अब मिठाई खाते-खाते सबका मन भर गया था। मिठाई को देखकर ही जी उचट जाता। हर कोई इंद्र से प्रार्थना करता—मिठाई की बरसात बन्द करो।

बस, फिर क्या था—एक दिन समोसे बरस पड़े। फिर एक दिन चटपटी चटनी से लिपटी आलू की टिक्कियां बरसीं। उसके बाद पनीर के गरमा गरम पकौड़े गिरे। साथ में सतरंगे अचार भी। सब ने चटखारे ले-लेकर खाए और मनचाहे ढंग से एकत्र करके रखे भी।

शहर में कल-कारखाने ठप्प, दुकानें-दफ्तर बन्द। इतना ही नहीं, बैंकों में ताले लटक गये। बिना कुछ करे-धरे बढ़िया से बढ़िया खान-पान हो, तो काम कौन करे, क्यों करे!

बढ़िया-बढ़िया माल लगातार खाते रहने से लोगों के पेट गड़बड़ा गए। वे चूरन-चटनी और हाजमे की गोलियां खाने लगे। और हुआ यूं कि एक दिन जलजीरे की ही बरसात होने लगी।

एक चक्कर और भी चला। रसगुल्ले की बरसात के दिन से ही खबर खूब फैली। हर तरफ से लोगों का रेला इस शहर में आने लगा। भीड़ बढ़ी, बढ़ती गई। इतनी भीड़ हुई कि रहने को ठौर नहीं। भीड़ बढ़ी तो गन्दगी बढ़ी। बीमारियां फैलनी शुरू हो गई। लोग परेशान हो उठे। शहर छोड़-छोड़कर जाने लगे।

किस शहर में हुई ऐसी बरसात? भई किस्सा पहले

का है। बाबा को उनके बाबा ने सुनाया था। उस नगर पर उन दिनों सनकी राजकुमार राज करता था। वह सोचा करता कि कुछ ऐसा करें, जो आज तक किसी ने न किया हो। सो उसी ने किसी तरह मिठाई की बरसा करवाई थी। इस सनक में उसका खजाना ही खाली हो गया। सनकी राजकुमार भी न जाने कहां गायब हो गया।

राजा की कमाई

दीवाली का दिन था। हर तरफ झिलमिल-झिलमिल हो रही थी। साफ-सुथरी उज्जैन नगरी दुलहन-सी सजी थी। ठाट-बाट से महाराजा विक्रमादित्य की सवारी निकल रही थी। राजसी सवारी देखने के लिए नगर में हर ओर भारी भीड़ थी। हर बरस महाराजा विक्रमादित्य देखा करते थे कि किसने कैसी सजावट की है, कैसी रोशनी की है। इससे वह प्रजा की खुशहाली का अनुमान लगाया करते थे।

भला विक्रमादित्य के राज्य में किसी को क्या कमी! जिधर देखो, लोग खुशियां मना रहे थे। बच्चे नाच-रंग में मस्त थे। सजा हुआ हाथी धम्मक-धम्मक चलता बढ़ रहा था। उसी पर महाराजा सवार थे। उनके पीछे राजसी परिवार तथा मंत्रियों और बड़े ओहदेदारों की लम्बी कतार थी। एक भव्य भवन को देख, महाराजा ठिठक गये। हाथी रुक गया। दर्शकों ने महाराजा का जय-जयकार किया।

महाराजा विक्रमादित्य ने महामंत्री से पूछा—"यह किसका भवन है? इसकी छटा तो मन को मोह रही है।"

महामंत्री बोले—"महाराज, यह सदाचारी पंडित की हवेली है। वही सदाचारी जिसने राजकोष से दान लेने से इन्कार कर दिया था।"

यों तो महाराजा विक्रमादित्य के सामने न जाने कितने ब्राह्मण दान लेने आया करते थे। वह किस-किस को याद करते। पर सदाचारी पंडित को वह कैसे भूल सकते थे।

उन्हें याद आया—"एक दिन दरबार लगा था। भूखा-नंगा-सा निर्धन सदाचारी पंडित दान मांगने आया था। विक्रमादित्य ने झट से आदेश दिया—"इसे राजकोष से दो अंजुरी भर सोने की मोहरें दे दो।"

सदाचारी पंडित दो पग पीछे हट गया। बोला—"महाराज, राजकोष में तो प्रजा का धन है। मैं आप से दान चाहता हूं।"

महाराज विक्रमादित्य ने तनिक सोचा, फिर बोले—"ब्राह्मण देवता, मैं राजा हूं। राजकोष से किसी को कुछ भी दे सकता हूं। आपको सोने की मोहरें लेने में आपत्ति क्यों है?"

सदाचारी पंडित बोला—"महाराज, महाराज, आप अपनी कमाई में से कुछ दे सकें तो दे दें, नहीं तो मैं खाली हाथ ही लौट जाऊंगा।"

महामंत्री तथा दरबारियों को लगा—पंडित छोटे मुंह बड़ी बात बोल रहा है। उनके चेहरों पर क्रोध था। पर महाराजा शांत थे। बोले—"ब्राह्मण देवता, तीन दिन बाद आइए।"

महाराजा विक्रमादित्य वेश बदलकर रात को महल से चले जाते। सुबह लौटते। तीन दिन बाद सदाचारी पंडित फिर दरबार में हाजिर हुआ। महाराजा ने उसके हाथ पर चार मोहरें रख दीं। बोले—"ये मैंने कमाई हैं। रात-रात

भर मैं किसी लुहार के यहां मजूरी करता रहा।"

अभी सवारी सदाचारी पंडित के द्वार पर रुकी थी। तभी वह बाहर आया और महाराज के चरणों में झुका। बोला—"आपके पसीने से कमाई चार मुहरों का यह कमाल है। उसी दिन से मेरे आलसी बेटे जी-तोड़ मेहनत करने लगे। इतने कम समय में उन्होंने खूब धन कमाया। यह ऊंची हवेली खड़ी हो गयी।"

महाराजा विक्रमादित्य मुस्कराये और सवारी आगे बढ़ चली।

जहां राजा का पसीना गिरा होगा, वह धरती भी महक उठी होगी।

लाजवाब इत्र

कभी दिल्ली में शाहजहां राज्य करते थे। शाहजहां देखने में सुन्दर थे। दरिया-दिल भी बहुत थे। उनके किस्से दूर-दूर तक सुने जाते थे। यहां तक कि बलख बुखारा के बादशाह ने भी शाहजहां की तारीफ सुनी। वह बादशाह खुद नेकदिल और दिलदार था। उसके मन में आया शाहजहां से दोस्ती कर लेनी चाहिए। तभी ख्याल आया कि कहीं बढ़ा-चढ़ाकर तो शाहजहां के किस्से बखान नहीं किये जाते हैं।

उसने तय किया कि भरोसे का एक आदमी दिल्ली भेजा जाए।

बुखारा का वह आदमी दिल्ली आया। खूबसूरत आदमी था। लक-दक बढ़िया कपड़े पहन, उसने अत्तार का भेप भरा। बढ़िया बेशकीमती इत्रों की एक पेटी बगल में दबाई। घूमने लगा दिल्ली के बाजारों में। जिधर भी निकल जाता, लगता कलियां चट-चट चटखी हों, खुशबू के फव्वारे फूट पड़े हों। दिल्ली के बड़े-बड़े अमीर-उमरा और रईसों से मिलता, इत्र सुंघाता।

सभी उस अत्तार की तारीफ करते। तरह-तरह के इत्र और लाजवाब। इत्र के पारखी भी 'वाह वाह' कर उठते।



पर जब भी कोई इत्र खरीदना चाहता, कीमत सुनकर चुप्पी साध लेता। बाजार से हजार गुनी कीमतें बताता था अत्तार।

एक दिन चांदनी चौक में कुछ लोग जमा थे। अत्तार ने वहां कहा—"हमने तो दिल्ली वालों की और यहां के बादशाह की बड़ी शोहरत सुनी थी। इसीलिए अपने मुल्क से इतनी दूर चला आया। पर यहां आकर तो लगा, जैसे ऊंची दुकान फीका पकवान। एक तोला इत्र भी किसी ने न खरीदा। हम तो अब अपने मुल्क लौट जाएंगे और यहां के हालात वहां जाकर बयान करेंगे।"

आसपास कितने ही लोग ये बातें सुन रहे थे। उनमें एक खां साहब भी थे। वह शाहजहां के मुंह लगे थे। वहां से चलकर तुरत-फुरत वह शाहजहां के पास पहुंचे। खां साहब बोले—"हुजूर, कोई परदेसी यहां बढ़िया माल लेकर आए और सिर्फ कीमत ऊंची होने की वजह से वह न बिके. इससे दिल्ली वालों की बदनामी होगी। आप कम-से-कम एक बार उसके इत्र तो देख लीजिए।"

शाहजहां ने तुरंत उस अत्तार को बुलवाने का हुक्म दिया। किले के बाहर ही वह मिल गया। कुछ ही देर बाद वह बादशाह के सामने हाजिर था।

सुंदर कपड़ों में सजे-धजे उस आदमी को देखकर शाहजहां खुश हो गए। उसके आते ही सब तरफ महक भी उठी। शाहजहां ने अपने निकट ही जाजम पर उसे बैठने को कहा। तरह-तरह के इत्र वह बादशाह को दिखाने लगा। दिखाते-दिखाते अचानक उसने एक शीशी को तनिक टेढ़ा कर दिया।

शीशी का इत्र जाजम पर ढुलक गया।

बादशाह शाहजहां ने झट से जाजम पर फैले इत्र से एक बूंद ली और हाथ पर मली। तभी अत्तार और बादशाह की आंखें चार हुईं। शाहजहां कुछ खिसिया गए थे। बोले–"भाई परदेसी, तुम्हारे इत्र लाजवाब हैं। तुम घुड़साल में जाकर सारा इत्र हमारे घोड़ों की लगाम पर छिड़क दो। सराय में भी जितना इत्र तुम्हारे पास है, सब दे जाओ और खजांची से कीमत ले लेना। इसके अलावा हजार अर्शाफियां भी बतौर इनाम तुम्हें दी जाती हैं।"

अत्तार बोला–"हुजूर, गुस्ताखी माफ हो। अब आप इत्र घोड़ों की लगाम पर छिड़कवाएं या दिल्ली की सड़कों पर। लेकिन बादशाह सलामत ने जो एक बूंद इत्र जाजम से उठाया, उसकी चर्चा तो बलख-बुखारा तक पहुंच ही जाएगी।"

शाहजहां बादशाह था। उसने कन्नौज से सबसे बढ़िया पांच–खुशबू इत्र मंगवाया। कांच की पांच सौ शीशियों में भरवाकर उस अत्तार को भेंट किया। आज भी बुखारा के लोग कहते हैं कि इत्र, इत्र तो बस हिन्दुस्तान का।

रोशनी की लकीर

जन्म से ही कोई गूंगा-बहरा हो। उसकी आंखों में मोतिया-बिंद भी हो। आपरेशन कराए, तो एक आंख से सदा के लिए दीखना बंद हो जाए। बस बाईं आंख में एक तिहाई रोशनी रहे। उस बेचारे को दुनिया कैसी अंधेरी लगेगी ?

तारानाथ नारायण शिनाय की कहानी ऐसी ही है। वह बम्बई के मामूली परिवार में जन्मे। मूक-बधिर थे, पर उन्होंने कभी हार नहीं मानी।

पांच साल के तारानाथ ने तैराकी शुरू कर दी। किशोर होने पर वह राज्य तैराकी में और फिर अखिल भारतीय तैराकी में भाग लेने लगे। उन्होंने अनेक इनाम जीते। पग-पग पर बाधाएं होने पर भी तारानाथ ने हाई स्कूल तक शिक्षा ली। रेलवे में लिपिक बन गए।

उन्होंने विश्व तैराकी प्रतियोगिता में शामिल होने का निश्चय किया। तारानाथ ने सात समुद्र की ओर पग बढ़ाए। इक्कीस समुद्री मील की दूरी १३ घंटे में पार की। वह दूसरे नम्बर पर आए।

चार साल पहले—वह फ्रांस के तट पर इंगलिश चैनल में कूद गए। ग्यारह घंटे तैरकर तारानाथ इंग्लैंड जा पहुंचे। उन्हें विश्व का सबसे तेज विकलांग तैराक माना गया।

इसके बाद भी दो बार उन्होंने इंगलिश चैनल पार की। स्वेज नहर लंबी दूरी तैराकी में भी उन्होंने अपनी धाक जमा दी।

महाराष्ट्र राज्य ने तारानाथ को छत्रपति पुरस्कार दिया। भारत सरकार ने अर्जुन पुरस्कार से सम्मानित किया। उन पर फिल्म भी बनी है।

तारानाथ ने रोशनी की ऐसी लकीर खींच दी है, जो जगमग-जगमग कर रही है। मन में चाह हो तो आगे बढ़ने की राह मिलती ही है।

दादी का पोता

हरा-भरा था जंगल एक। अलग अकेला वहां था घर एक। घर में रहती बुढ़िया एक। बुढ़िया का था पोता एक। छोटा था, पर था वह नेक। उनके पास थी बकरी एक, बिल्ली एक।

वे थे गरीब। कुछ खास आमदनी न थी। बुढ़िया धीरे-धीरे चर्र चूं चरखा काता करती। जो कातती, उसी से कुछ सहारा लग जाता। फल-फूल और बकरी का दूध। इसी से दादी-पोता काम चलाते। दादी के पास एक कुर्सी थी। वह आगे-पीछे झुलाती और पहियों पर चलती भी थी। पोता हर दिन दादी से कहता—"कहानी सुनाओ।" दादी कुर्सी पर बैठ जाती। धीरे-धीरे झूलती जाती—कहानी कहती रहती।

यूं ही दिन गुजरते रहे। एक दिन दादी बोली—"मुझे जाना है। दूर मेरी चाची रहती है। उसी से मिलने जाऊंगी। बच्चे उसे पसंद नहीं हैं। इसलिए तुम्हें साथ नहीं ले जा सकती। तुम यहीं रहो।"

पोता बोला—"मैं यहां अकेला रह सकता हूं, पर मुझे कहानी कौन सुनाएगा हर रोज।"

"ओह, इसमें कोई कठिनाई नहीं। जब तुम कहानी सुनना चाहो, इस कुर्सी पर बैठ जाना। 'कहानी कहो कुर्सी'

–इतना कहोगे, तभी कहानी सुनाने लगेगी कुर्सी। पर हां, एक दिन में एक ही कहानी सुनने को मिलेगी।"–दादी बोली।

पोता खिलखिलाकर हंस दिया। दादी उसके गालों को थपथपाकर यात्रा पर चली गई। दिन पर दिन सरकने लगे। पोता बकरी के लिए नरम-नरम घास ले आता। दूध दुह लेता। उसने घर के आसपास तरह-तरह के पौधे लगाए। फूल उगाए, फल उगाए। कभी बकरी से खेलता, कभी बिल्ली से।

अक्सर शाम को कुर्सी पर जा बैठता। उससे कहता–"कुर्सी, अब तू कहानी सुना।" और सचमुच कुर्सी कहानी कहने लगती। वह इधर-उधर ताक-झांक करता, पर यह कभी नहीं जान सका कि आवाज कहां से आती है। कौन बोलता है कुर्सी में।

पर इस तरह भी कब तक चलता। दादी तो लौटी नहीं। पोते ने सोचा, वह दादी के पास चल दे। पर उसे कुछ अता-पता था नहीं। सो, एक दिन वह कुर्सी पर बैठा था। उससे बोला–"अरी कुर्सी, ले चल कहीं दूर। कहानी भी सुना और दिखाती भी चल।"

बस फिर क्या था, कुर्सी के तो मानो पंख लग गए। पोते ने देश-देश की सैर की।

अनोखा उपहार

विधाता एक दिन बैठे थे। आसपास सेवक खड़े थे। कब कौन-सा आदेश मिले और वे पालन करें। अचानक विधाता बोले—"तुम सब पृथ्वी पर जाओ। वहां से मेरे लिए कोई अद्भुत उपहार लाओ। जो सबसे अच्छा उपहार लाएगा, वही मेरा प्रिय सेवक होगा।"

पलक झपकते ही सब सेवक पृथ्वी की ओर चल दिए। कोई कहीं जा पहुंचा। कोई कहीं। वे ढूंढ़ते रहे। अपनी-अपनी समझ से बेशकीमती उपहार लेकर विधाता के पास पहुंचे। अनोखे हीरे-जवाहरात, कीमती धातुओं में तराशी गई मूर्तियां, दुर्लभ फल-फूल और भी न जाने क्या-क्या? पर विधाता किसी भी उपहार को पाकर प्रसन्न नहीं हुए। अभी एक सेवक नहीं लौटा था।

अंतिम सेवक आ गया। उसने हाथ जोड़े। फिर झोले में से निकालकर बड़ी-सी एक पुड़िया विधाता को दी। पुड़िया खोली गई तो सब हैरान। विधाता ने कहा—"अरे, तुम यह क्या ले आए, यह तो मिट्टी····।"

सेवक बोला—"भगवान क्षमा करें। यह मिट्टी ही है। किसान इसी मिट्टी में बीज डालता है। इसी में लहलहाती फसलें उगती हैं। उससे मनुष्य और पशु पेट भरते हैं। पृथ्वी

पर रहने वाले इसी माटी के लिए हंसते-हंसते प्राण भी दे देते हैं।"

विधाता मुसकराए। उन्होंने मिट्टी को माथे से लगाया। फिर बोले–"सचमुच तुम्हारा उपहार सर्वश्रेष्ठ है।"

अपनी माटी अपनी ही होती है। हम इसको प्यार करना और माथे पर लगाना सीखें।

ना धन मेरा

पिछड़े गांव में पैदा हुआ एक बालक। धीरे-धीरे संगीत में रुचि हुई। बढ़ते-बढ़ते दरबार का संगीतज्ञ बन गया। उस ने सोचा–"क्यों न दूर देशों में जाऊं। अपनी कला दिखाऊं, धन कमाऊं।"

राजा ने उसे रोकना चाहा। पूछा–"क्या दुख है तुम्हें यहां?" संगीतकार बोला–"मैं यहां बंधकर नहीं रहना चाहता। दूसरे देशों के लोग भी मेरे संगीत से झूम उठें, यही मैं चाहता हूं।"

वह रुका नहीं। वीणा लेकर निकल पड़ा। जगह-जगह लोग जुड़ते। उसका संगीत सुनकर झूम उठते। चर्चा फैलती गई। हीरे-मोती मिले, कीमती आभूषण भी मिले।

बरसों बाद वह कलाकार अपने देश को लौट चला। बेशकीमती चीजों से भरे कई संदूक साथ थे। उन दिनों पानी के जहाज थे। सबको पता था कि संगीतज्ञ के साथ खूब दौलत है। बीच समुन्दर में कुछ नाविकों ने उसे घेर लिया। बोले–"हम तुम्हारा धन ले लेंगे।" संगीतज्ञ घबरा गया, बोला–"ले लो।"

वे बोले–"हम तुम्हें भी जिंदा नहीं छोड़ेंगे। तुम बच गए, तो सारा रहस्य खोल दोगे।"



संगीतज्ञ ने तनिक सोचा। फिर बोला—"मैं मरने को तैयार हूं, पर मुझे आखिरी बार वीणा बजा लेने दो।"

उसने वीणा बजाई, खूब बजाई। संगीत के स्वर हर ओर फैलते गए। फिर वह चुप हो गया। यकायक पानी में कूद पड़ा।

समंदर में जहाज के आसपास कितनी ही मछलियां एकत्र हो गई थीं। वह गिरा तो एक बहुत बड़ी मछली के ऊपर। मछली उसे लेकर चल दी। किनारे पर जा छोड़ा।

संगीतज्ञ ने कहा—"उन बक्सों के धन ने मुझे भटकाया। संगीत ही मेरा सच्चा धन है।" हम भी इसे जीवन में अपनाएं।

चिकने कंकड़

एक माली था। बाग में मिट्टी खोदता, पौधे रोपता और उसे हरा-भरा रखता। एक दिन पेड़ की जड़ में खोद रहा था। उसे एक हांडी मिली। हांडी का मुंह बंद था। माली ने मुंह खोला। हांडी में सुंदर-सुडौल, कटे-छठे कुछ पत्थर थे।

यह देख, माली मुसकराया। वह अपने आपसे बोला, "हुंह, खेलने के लिए चिकने पत्थर रख, किसी बालक ने हांडी को यहां दबा दिया।"

बाग में बंदर उछल-कूद किया करते थे। गुलेल में कंकड़ या पत्थर के टुकड़े रखकर माली बंदरों को भगाया करता था। वह हांडी के पत्थरों को भी बंदर भगाने के काम में लाने लगा।

मौके की बात, एक दिन उसने बंदर पर निशाना साधा। निशाना चूक गया। वह चिकना-सा पत्थर एक सेठ के आंगन में जा गिरा। सेठ ने झट से पत्थर उठा लिया। देखा तो चौंक उठा। सेठ क्या था, जौहरी था। झटपट ढूंढ़ता-ढांढता माली के पास आया। उसने पूछताछ की। माली की हांडी में उसी तरह के चार पत्थर बचे थे। सेठ ने उन्हें खरीद लिया। दस-बीस रुपये में नहीं, चालीस हजार

रुपये में। माली को मालामाल कर दिया।

पर माली अपनी मूर्खता पर सिर धुन रहा था। उसने कीमती पत्थरों को ठीकरे ही समझा और बंदरों पर फेंकता रहा।

अक्सर हम यही नहीं समझ पाते कि हमारे पास क्या कुछ है। समय निकल जाता है तो पछताते हैं।

चांदी का कटोरा

तिब्बत के पहाड़ी क्षेत्र में एक गुफा थी। गुफा में छोटा-सा मंदिर था। मंदिर में पहुंचे हुए एक लामा रहते थे। वह पूजा-पाठ में ही लीन रहते। आसपास के गांवों से कोई-न-कोई उनके लिए खाने को कुछ दे जाता। उसी से अपना काम चला लेते।

मंदिर में पूजा के लिए चांदी के कई कटोरे थे। कुछ और कीमती सामान भी था। एक दिन नवांग चोर गुफा में आया। मंदिर के कटोरे तथा दूसरी चीजें देख, मन-ही-मन खुश हुआ। उसने सोचा—"रात के समय लामा सो जाएंगे, तभी चुपके से आकर मैं इन्हें चुरा ले जाऊंगा। कई महीने के खर्चे का इंतजाम हो जाएगा।"

नवांग ने पूरी योजना बना डाली। इसी ताक में रहा कि कब रात हो। अंधेरा हुआ, तो वह देर तक गुफा के आसपास आहट लेता रहा। फिर उसे लगा, भीतर लामा सो गए हैं। दबे पांव वह अंदर की ओर चला। भीतर पहुंच गया। उसे लगा, लामा बैठे-बैठे ही सो रहे हैं। नवांग ने झटपट सामान बटोरना शुरू कर दिया। लामा तो रात में देर-देर तक पाठ किया करते थे। उन्होंने आंखें खोलीं। नवांग को चोरी करते पाया। झट नवांग का हाथ पकड़

लिया। पास में पड़ी एक लकड़ी उठाई। मंत्र का जाप करते-करते ही कई बार उसके हाथ पर दे मारी।

नवांग की सारी योजना धरी रह गई। वह उल्टे पांव वहां से भागा। उसका हाथ दर्द कर रहा था। उस पर चमकदार निशान पड़ गए थे। वह कुछ ही दूर गया कि सामने संकरा पुल आ गया। देखता क्या है कि अंधेरे में कोई डरावनी चुड़ैल-सी बढ़ी आ रही है। नवांग की तो घिग्घी बंध गई। डरा-डरा वह उसी छोटे-से मंत्र को बोलने लगा, जो लामा ने बोला था। चुड़ैल को लगा कि यह कोई सिद्ध लामा है। वह तुरत-फुरत वहां से रफू-चक्कर हो गई। अब नवांग की जान में जान आई। उसने सोचा, यह मंत्र तो बड़ा करामाती है। इससे मुसीबतों से छुटकारा मिल जाता है। वह रोजना मंत्र जाप करता। चोरी करनी उसने छोड़ दी थी।

दो बरस यों ही निकल गए। इस बीच नवांग मेहनत से कमाई करने लगा था। उसने पैसा जोड़-जोड़कर चांदी का कटोरा बनवाया। फिर एक दिन नवांग उसी गुफा मंदिर में गया। आज भगवान के सामने उसने चांदी का वह कटोरा रख दिया। बोला—"प्रभो, आज चोरी करने नहीं आया। आपको भेंट करने आया हूं।"

वही बूढ़ा लामा उसके पास आया। उसने नवांग को आशीर्वाद दिया। नवांग के शरीर पर जो निशान पड़ गए थे, वह अपने आप मिट गए।

नवांग की तरह कौन कब भटक जाए, नहीं कह सकते। पर बुराई में से भी अच्छी राह हमें खोज लेनी चाहिए।

कबाड़िया सेठ

एक कबाड़ी था। इधर-उधर फेरी लगाया करता था। रद्दी और पुराना सामान खरीद लेता। उसी को इकट्ठा करके फिर किसी जरूरतमंद को बेच देता। किसी तरह गुजारा करता था। धीरे-धीरे उसका कारोबार बढ़ता गया। उसके पास काफी धन हो गया। लोग उसे कबाड़िया सेठ कहने लगे।

अब कबाड़िया सेठ और भी कई धंधे करने लगा। उसके पास धन-दौलत का ढेर लगने लगा। सेठ ने एक नियम बना रखा था—कोई आदमी कुछ बेचने आए, तो उसे अवश्य खरीद लेता।

एक दिन एक आदमी कागज की एक पुड़िया हाथ में लिए था। कई लोगों ने पूछताछ तो की, पर पुड़िया भला कौन खरीदता? वह आदमी कबाड़िया सेठ के दरवाजे पर पहुंचा। सेठ ने पुड़िया ले ली और कीमत दे दी। पुड़िया वाला खुशी-खुशी सेठ को दुआ देता चला गया। उस समय सेठ काम में लगा था, इसलिए उसने पुड़िया साफे में बांध ली।

लोगों ने देखा, सेठ ने कागज की पुड़िया ही खरीद ली। यह भी जांच नहीं की कि उसमें है क्या? किसी ने

सोचा कि सेठ का दिमाग फिर गया है। इधर-उधर यह चर्चा फैल गई कि सेठ को कागज की पुड़िया बेचकर एक आदमी बुद्धू बना गया।

दिनों-दिन सेठ की बढ़ती देख, लोग ईर्ष्या भी करने लगे थे। कुछ लोगों ने षड्यंत्र रचा। दरबार में उन्होंने कबाड़िया सेठ के बारे में बात चलाई। राजा से कहा कि सेठ तो आपको भी कुछ नहीं समझता। प्रजा में यह बदनामी हो रही है कि राजा कंजूस है, सेठ हर किसी की मदद करता है। धीरे-धीरे राजा के कान ऐसे भरे गए कि कबाड़िया सेठ को जेल में बंद करने का हुक्म हो गया।

सेठ ने यह सुना, तो हक्का-बक्का रह गया। कहीं उसकी सुनवाई भी न हुई। कैद में वह बहुत उदास था। बैठे-बैठाए उसका हाथ साफे पर गया। पुड़िया हाथ में आ गई। सेठ ने पुड़िया खोल ली। पुड़िया में कुछ था ही नहीं, बस इतना लिखा था—"समय एक-सा नहीं रहता।"

यह पढ़कर सेठ के सामने आशा की किरण चमक उठी। वह हंस दिया। हंसा, खूब खिलखिलाकर हंसा। जो सेठ मुंह लटकाए बैठा रहता, पहरेदार ने उसे हंसते देखा तो हैरान। उसने सोचा, शायद कैद में सेठ पगला गया है। बस, उसने ऊपर खबर कर दी। बात राजा तक पहुंच गई।

राजा को विश्वास न हुआ। वह स्वयं वहां आए। उन्होंने सेठ से पूछा कि क्या बात है? सेठ ने सारी घटना सच-सच बता दी!

राजा को लगा—सेठ के साथ अन्याय हो गया। तुरंत

सेठ को रिहा करने का हुक्म दे डाला । राजा बोले–"सच-मुच, समय एक-सा नहीं रहता ।"

कबाड़िया सेठ फिर पहले की तरह ही लोगों की मदद करने लगा ।

दुःख के पीछे सुख और सुख के साथ दुःख अक्सर चलते हैं ।

गोली कहां लगी

बिहार की राजधानी पटना। सोमवार, दस अगस्त के दिन बहुत सवेरे से ही गलियां प्रभात फेरी और नारों से गूंज उठी थीं।

अजब जोश था हर तरफ। दोपहर को एक जुलूस बिहार सरकार के दफ्तर की ओर बढ़ चला। राह सीधी थी, पर सरल न थी। कुछ ही दूरी पर एक अंग्रेज अफसर पुलिस टोली लिए मिल गया। उसने कड़ककर कहा—"यहीं से लौट जाओ। खबरदार जो आगे बढ़े।"

पर बरसाती नदी किसके रोके रुकी है। भीड़ बढ़ती, लाठियां चलतीं, घोड़े दौड़ाए जाते। सिर फूटते, हाथ-पांव टूटते। कुछ छितर जाते। नए नारों के साथ फिर आ जुटते।

रुकते-बढ़ते, पिटते-पिटाते जुलूस सचिवालय जा पहुंचा। घोड़े पर सवार अंग्रेज कलक्टर मि० आर्चर गोरखा पल्टन के साथ वहां मौजूद था। गुस्से से उसका चेहरा तमतमा रहा था। गरज उठा—"ऐ मैन, तुम क्या करना मांगता ? गो बैक।"

"हर दफ्तर पर तिरंगा फहराएंगे।"—भीड़ में से आवाज आई।

"तुममें से जो-जो झंडा फहराना चाहता है, वह आगे आओ।"—कलक्टर ने क्रोध में कहा।

देखते ही देखते ग्यारह-बारह छात्र आगे निकल आए। कोई पन्द्रह साल का, तो कोई तेरह साल का।

अंग्रेज ने मखौल करते हुए कहा—"तुम बच्चा लोग झंडा फहराएगा ?"

उधर से छाती ताने किशोरों ने कहा—"हां, हम वहां तिरंगा फहराकर ही लौटेंगे।"

कलक्टर गरज उठा—"फायर, फायर !"

कुछ सैनिक आगे निकल आए। उन्होंने झटाझट राइफलें तानी और गोलियां छोड़ दीं। धम्म-धम्म-धड़ाम। धरती खून से रंगीन होने लगी।

पर जुलूस में से कोई भागा नहीं। यह देखकर तो अंग्रेज कलक्टर के सिर पर भूत सवार हो गया। उसने फिर आर्डर दिया—"फायर, फायर !"

सिपाहियों ने हुक्म बजाया, गोलियां दागीं। बहुत-से लोग घायल हो गये। कितने ही जमीन पर लुढ़क गए।

"अंग्रेजो, भारत छोड़ो, वंदे मातरम्, क्विट इंडिया।" खामोशी को तोड़ता हुआ अचानक आकाश में कोई स्वर गूंज उठा।

न जाने किधर-किधर से होते हुए एक युवक सचिवालय के गुम्बद पर जा चढ़ा था। उसने वहां तिरंगा फहरा दिया और 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' के नारे लगाने लगा।

कलक्टर ने यह देखा तो उसके चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। दुगुने गुस्से से बोला—"फायर ।"

वह युवक धरती पर आ गिरा—मानो आसमान से एक तारा टूटा हो।

अस्पताल की मेज पर वह अधमरा लेटा था। मूर्च्छा टूटी, तब उसने पूछा—"मेरे को गोली कहां लगी ? बताओ, गोली कहां लगी ?"

डाक्टर बोला—"गोली सीने में लगी है।"

लड़का तनिक मुस्कराया। फिर बोला—"अच्छा हुआ। लोग यह तो न कहेंगे कि भागते हुए पीठ पर गोली लगी।" इतना कह, उसने सदा-सदा के लिए आंखें मूंद लीं।

सेठ के मोदक

श्रीकृष्ण एक दिन तीर्थंकर नेमिनाथ से मिलने गए। कुछ देर तक उनसे बातचीत करते रहे। बातों-बातों में श्रीकृष्ण ने पूछा–"आपके आसपास कितने ही साधु-साध्वी रहते हैं। उनमें आप किसे बड़ा तपस्वी मानते है ?"

नेमि बोले–"वासुदेव, यूं तो कई ऐसे हैं, जो त्याग-तप में काफी बढ़े हुए हैं। पर ढंढण इनमें सबसे बढ़ा-चढ़ा तपस्वी है।"

श्रीकृष्ण ने फिर पूछा–"पर ढंढण किस तरह की तपस्या करते हैं ?"

नेमि तनिक मुस्करा दिए। फिर बताने लगे–"हे मधुसूदन, ढंढण शरीर से कमजोर है। वह भूखे रहकर तपस्या नहीं करता। ऐसा करना उसके लिए संभव भी नहीं। पर जो कुछ भी रूखा-सूखा भिक्षा में मिलता है, उसे ही प्रसन्नता से खाता है। किसी दूसरे का लाया नहीं खाता।"

श्रीकृष्ण को थोड़ा अटपटा लगा। बोले–"महाराज, द्वारिका में भिक्षा की तो कमी नहीं होनी चाहिए। ढंढण मुनि को अच्छा भोजन क्यों नहीं मिल पाता ?"

नेमिनाथ बोले–"ढंढण ने जैसा पिछले जन्म में किया, उसी का फल पा रहा है। आप जानना ही चाहते हैं, तो

बताता हूं :

"पिछले जन्म में ढंढण क्षेत्रपाल था। एक भू-खंड पर राजा की ओर से वह खेती करवाता था। सैकड़ों बैल और कर्मचारी उसके आदेश से काम करते। बहुत सवेरे से ही खेती का काम चालू हो जाता था। दोपहर होते-होते कर्मचारी और पशु थक जाते। खा-पीकर थोड़ा विश्राम करना चाहते, पर ढंढण विश्राम के समय उनसे अपने खेतों में काम कराता। इस तरह लालच के वश दूसरों के साथ अन्याय किया करता। बस, उसी कर्म का फल इसे मिल रहा है। द्वारिका में देने वालों की कमी नहीं है, पर ढंढण रूखा-सूखा ही पाता है।"

श्रीकृष्ण ने मुनि ढंढण से मिलने की इच्छा प्रकट की। नेमिनाथ बोले—"आप यहां से राजभवन जायेंगे, तो वह राह में ही आता हुआ मिल जाएगा।"

श्रीकृष्ण वहां से चल दिये। सचमुच कुछ दूर जाने पर उन्होंने एक मुनि को आते देखा। वे दुबले-पतले मुनि ढंढण को पहचान गए। श्रीकृष्ण ने हाथी को रोका। नीचे उतरे और मुनि को नमस्कार किया। फिर बातचीत करने लगे। उधर से कोई साहूकार गुजर रहा था। उसने सोचा—'महाराज श्रीकृष्ण इस मुनि से बातें कर रहे हैं। जरूर यह कोई सिद्ध पुरुष होगा। शायद इससे कोई लाभ हो सके।' श्रीकृष्ण के चले जाने पर उसने घर ले जाकर उसे कुछ मोदक भेंट किए। ढंढण ने लौटकर गुरु नेमि को बताया कि आज उसे मोदक मिले हैं।

नेमिनाथ बोले—"ये मोदक तुम्हें महाराज कृष्ण के

कारण मिले। यह श्रीकृष्ण की उदारता है, तुम्हारी नहीं।"

ढंढण समझ गया। उसने वे मोदक नहीं खाए। सोचता रहा तो उसे अपने पिछले जन्म की बातें याद आईं। तप करते-करते उसके पिछले गलत कर्मों के बंधन कट गए थे।

तेली का बैल

टिन-टिंग, टिन-टिंग, टिन-टिंग— कोल्हू में बैल चले जा रहा है। उसके गले में घंटी बजे जा रही है। तभी एक वकील साहब तेल खरीदने आए। तेली से बोले—"भई वाह! बैल अपने आप घूमे जा रहा है। इसे चलाने वाला कोई नहीं।"

तेली ने बताया—"बाबू जी, बैल की आंखों पर तो पट्टी बंधी है। उसे क्या पता, कोई चलाने वाला है या नहीं।"

वकील भला यों ही चुप कैसे हो जाए! बोला—"तुम तो इसकी ओर पीठ किए बैठे हो। अगर बैल कभी यह जांच करने को ही खड़ा हो जाए कि कोई चलाने वाला है भी या नहीं, तुम्हें तो पता भी न लगे।"

"वाह जी, गले में घंटी जो बांध रखी है। चलता रहता है, घंटी बजती जाती है। वह रुका नहीं कि घंटी भी रुक जाती है। बस, झट से हांक देता हूं। उसे भान तक नहीं होता कि इस बीच चलाने वाला था या नहीं।"—तेली ने बताया।

वकील आसानी से बात मान ले तो वकील कैसा! फिर बोला—"लेकिन ऐसा भी तो हो सकता है, बैल खड़ा हो जाए और गर्दन हिलाता रहे।"

तेली बिगड़ गया। बोला—"साहब, बैल आपकी तरह



पढ़ा-लिखा नहीं है। पर मेहरबानी करके धीरे बोलिए। कहीं उसने आपकी बातें समझ लीं, तो मेरा काम चौपट हो जाएगा।"

टिक-टिक, टिक-टिक—समय की घंटी बजती रहती है। हम कोल्हू की तरह घूमते जाते हैं—सुबह-शाम, शाम-सुबह। कहीं कुछ हंसी-खुशी नहीं, हा-हा, हू-हू, खिल-खिल नहीं।

मिठाई का पहाड़

धीरे-धीरे अपनी चाल से चली जा रही थी एक चींटी। सामने से चली आ रही थी एक चींटी। दोनों मिलीं। राम-राम, श्याम-श्याम हुई। एक ने दूसरे के हाल-चाल पूछे। पहली चींटी बोली—"बहन, वैसे तो सब मौज है, पर मुंह का जायका ठीक नहीं रहता। हमेशा खारा बना रहता है।"

दूसरी चींटी ने सिर खुजलाया। फिर तनिक सोचकर कहने लगी—"तुम नमक के पहाड़ पर रहती हो, इसलिए ऐसा होगा। चलो मेरे साथ। मैं मिसरी के पहाड़ पर रहती हूं। वहां सब मीठा ही मीठा है।"

पहली चींटी आगे-आगे, दूसरी पीछे-पीछे। जा पहुंचीं मिसरी के पहाड़ पर। वहां पहुंचकर दूसरी चींटी ने पूछा—"कहो बहन, अब क्या हाल है?"

पहली चींटी बोली—"मेरा तो मुंह अब भी मीठा नहीं हुआ, खारा का खारा ही है।"

सहेली सोच में पड़ गयी। फिर उसने पूछा—"तुम्हारी कोई दाढ़ तो खोखली नहीं। कहीं नमक की डली फंसी हो उसमें।"

पहली चींटी ने मुंह फाड़ दिया। सचमुच उसके मुंह

में नमक की डली थी। मिसरी के पहाड़ की चींटी ने नमक की डली बाहर निकाल दी। मिसरी रख दी। बस, फिर क्या था—सब मीठा। दोनों हंसने लगीं और खुशी से नाचने लगीं।

जायका बदलने तक तो मिठाई ठीक है, पर हर समय हम मीठा ही मीठा खाते रहें, तो गड़बड़ हो जाती है।

लालटेन वाले बाबा

एक दिन सड़क पर जा रहा था। देखा—एक साधु जलती हुई लालटेन लिए चले जा रहे हैं। देखकर सोचा, शायद भूल से लालटेन जलती रह गयी है। मैं उन्हें टोकने ही वाला था, किसी ने बताया—"यह लालटेन वाले बाबा हैं। हमेशा ही जलती लालटेन लेकर चलते है।"

दोपहर का समय था। सूरज खिला हुआ था। मैं बाबा के पास गया। पूछा—"बाबा, जलती लालटेन लेकर क्यों चलते हो ? क्या खोजते फिरते हो ?" बाबा बोले—"मैं इंसान को खोजता फिरता हूं।"

मैंने कहा—"हर तरफ लोग आ-जा रहे हैं। क्या ये सब इंसान नहीं हैं ?"

वह बोले—"ये सब खरे इंसान कहां हैं ! अपने लिए जीते हैं। सारी भाग-दौड़ अपने लिए कर रहे हैं। किसी दूसरे से कोई मतलब नहीं इन्हें। अरे बच्चा ! लालटेन की *बत्ती खुद जलती है, पर रोशनी दूसरों को देती है।"*

बाबा इतना कहकर आगे बढ़ गए। उनकी लालटेन की रोशनी बहुत देर तक आंखों को जगमग-जगमग करती रही। सचमुच हम सब अपने लिए ही तो जीते हैं। कभी दूसरों के बारे में कुछ सोचते ही नहीं।

बाबा की लालटेन हमें राह दिखा रही है। कोई-न-कोई कितना ही छोटा-सा काम हो, हम दूसरों के लिए भी किया करें। हो सके तो हर रोज करें। किसी की सेवा या भलाई करने में अनोखा सुख मिलता है।

बंधन खोल दिए

याद आ रही है राजा रिपुदमन और सेनापति जयवीर की कथा। रिपुदमन बहुत बड़े राज्य के स्वामी थे। उनका बचपन का दोस्त था जयवीर। वे साथ-साथ पले-बढ़े थे। एक गुरु के आश्रम में शिक्षा पाई थी। एक ही आचार्य से अस्त्र-शस्त्र विद्या की शिक्षा ली थी। भयंकर युद्धों में कंधे से कंधा मिलाकर लड़े थे।

जयवीर की स्थिति पर दरबार के बाकी लोग ईर्ष्या करते थे। उनकी कोशिश रहती थी, जयवीर को राजा की नजरों में गिराने की।

एक बार रिपुदमन और जयवीर शिकार खेलने निकले, तो शत्रुओं के जाल में उलझ गए। रायगढ़ के जासूस उन्हें धोखे से पकड़कर ले गए। जंगल में एक गुफा में कैद कर दिया।

एक रात जब पहरेदार ऊंघ रहे थे, तो एक व्यक्ति चुपचाप गुफा में घुसा! उसने जयवीर को संकेत से एक तरफ बुलाया।

उस व्यक्ति ने पूछा—"मुझे जानते हो?"

जयवीर ने इंकार में सिर हिलाया, तो उसने कहा—"आपको याद नहीं, पर मैं आपको कभी नहीं भुला सकता।

मेरा नाम राजसिंह है। एक बार युद्ध में लड़ते समय मैं बुरी तरह घायल हो गया था। आपका एक सैनिक मुझे मारना चाहता था। तब आपने मेरे प्राण बचाए थे। यहां की जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। आप चले जाइए, अपने प्राण बचाइए। आपको कोई नहीं रोकेगा।"

सुनकर जयवीर सोच में डूब गया। उसने कहा—"और हमारे महाराज ?"

"मैं केवल एक व्यक्ति को बचा सकता हूं।" राजसिंह ने कहा।

"तो तुम महाराजा रिपुदमन को जाने दो। उनके न रहने से हमारा राज्य संकट में पड़ जाएगा। मुझ पर उनके बहुत एहसान हैं। मैं उन्हें संकट में अकेले छोड़कर कभी नहीं जाऊंगा।" जयवीर ने कहा।

जयवीर की बातें महाराजा रिपुदमन ने भी सुन लीं। उन्होंने जयवीर को गले से लगा लिया। उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। उन्होंने जयवीर से बच निकलने को कहा, पर वह उनका साथ छोड़ने को तैयार नहीं हुआ।

रिपुदमन और जयवीर का परस्पर स्नेह देख, राजसिंह का मन डांवाडोल हो गया। कुछ सोचकर उसने कहा—"मैं अभी आता हूं।"

राजसिंह सीधा रायगढ़ नरेश के पास गया। उनके सामने सब सच-सच बता दिया। कुछ भी नहीं छिपाया—"महाराज, मैं जानता हूं, मुझे आप मृत्यु दंड देंगे, मैं यह नहीं देख सकता कि मेरे प्राण बचाने वाला, मेरे सामने ही मारा जाए।"

राजसिंह की सच्चाई से रायगढ़ के राजा बहुत प्रभावित हुए। वह स्वयं उसके साथ गुफा में पहुंचे। महाराज रिपुदमन से बोले—"आपने दिखा दिया कि आप कितने महान् हैं।" जयवीर से कहा—"तुम्हारी स्वामिभक्ति बेमिसाल है। मुझे लग रहा है, मैं आप लोगों से दोस्ती न करके कितनी बड़ी भूल कर रहा था।" फिर उन्होंने महाराजा रिपुदमन और जयवीर के बंधन अपने हाथों से खोले। कहा—"आज से हम लोग मित्रता के बंधन में बंध गए हैं।" राजसिंह की ओर संकेत करके कहा—"मैं इसका बड़प्पन और ईमानदारी आज जान सका हूं। इसने आपके और मेरे बीच पुल का काम किया है।"

कल फिर आना

लंका में लड़ाई चल रही थी। रावण का बेटा इंद्रजीत भयंकर युद्ध कर रहा था। हजारों सैनिक मारे गए। अंगद ने इंद्रजीत पर हल्ला बोला। उसका रथ टूट गया। इंद्रजीत ने नई चाल चली। उसने ऐसे मंत्र पढ़े कि वह सामने हो, तो भी दूसरे उसे न देख सकें। फिर उसने विषैले नाग-बाण चलाए। श्रीराम और लक्ष्मण भी घायल हो गए। सांप के डसने जैसी तेज़ पीड़ा उन्हें होने लगी।

इंद्रजीत फूला न समाया। वह रावण के पास जा पहुंचा। बोला—"पिताजी, मैं आपका काम पूरा कर आया। अब राम-लक्ष्मण नही बचेंगे।"

राक्षसों ने मान लिया कि राम-लक्ष्मण मारे गए। वे अट्टहास कर, चारों दिशाएं गुंजाने लगे। रावण महल में खुशियां मनाने लगा।

तभी जैसे तेज़ आंधी आई। पक्षिराज गरुण उड़ता हुआ वहां आया। उसने दोनों भाइयों को छुआ। राम-लक्ष्मण के शरीर में लगे सारे सर्प-बाण लुप्त हो गए। वे दोनों एकदम ठीक हो गए। सुग्रीव तथा सभी वानर खुशी से नाच उठे। श्रीराम की सेना ने फिर धावा बोल दिया।

रावण ने कोलाहल सुना। डरते-डरते राक्षसों ने उसे

खबर दी । "महाराज, वानर सेना दुर्ग पर हमला कर रही है।" रावण हैरान रह गया । बोला–"आज तक मैंने नाग-बाण से घायल होने पर किसी प्राणी को जीवित नहीं देखा।"

रावण ने तुरंत धुम्राक्ष को बुलवाया । उसे आदेश दिया–"तुम राम-लक्ष्मण का वध करने तुरंत जाओ।"

कई राक्षसों को साथ ले धुम्राक्ष दुर्ग से बाहर आया। उसने जमकर युद्ध किया लेकिन वह भी मारा गया । राक्षस सेना के कितने ही योद्धा मारे गए । यहां तक कि नील ने रावण के सेनापति प्रहस्त का वध कर डाला ।

गर्व से रावण राक्षसों से बोला–"इन वानरों की यह हिम्मत ! इन्होंने बहुत से हथियार देखे भी न होंगे। युद्ध कला से इनका क्या वास्ता ! मैं इन सबको धूल चटा दूंगा।"

सोने के रथ पर सवार होकर, रावण दुर्ग से बाहर निकला। वज्र जैसा उसका शरीर था । वह वानर सेना के छक्के छुड़ाने लगा । नील को उसने बेहोश कर दिया । हनुमान के साथ मुष्टि युद्ध हुआ । रावण पर तो जैसे कोई असर ही न पड़ा । लक्ष्मण आगे आए, पर रावण का कुछ न बिगाड़ सके । फिर श्रीराम से उसका भीषण युद्ध होने लगा । रावण घायल हो गया । उसका रथ टूट गया । मुकुट नीचे गिर गया । धनुष हाथों से छूटकर गिर पड़ा । यहां तक कि रावण भी धरती पर ढह गया ।

तब श्रीराम ने कहा–"हे रावण, आज मैं तुम्हें छोड़ देता हूं । महल में जाकर आराम करो । कल फिर तैयार होकर आना ।"

रावण को नीचा देखना पड़ा । वह सिर झुकाए लौट गया । बाद में उसे श्रीराम के हाथों ही मरना पड़ा ।

मेरा सब कुछ

रंगून की घटना है–सुभाष बाबू की माला नीलाम हुई। पहली बोली लगी–एक लाख। दूसरी बोली–दो लाख.... तीन, चार, पांच, सात और नौ लाख तक बोली बढ़ती चली गई। एक पंजाबी युवक भी वहां खड़ा था। वह सर्राफ था। उससे न रहा गया। उसने बोली लगाई–"मेरा सब कुछ !"

बस नीलामी पूरी हो गई। लोगों ने उस युवक को कंधों पर उठा लिया। उसने माला ले ली। उसे माथे से लगा लिया। उसकी आंखों में खुशी के आंसू थे।

दूसरे दिन युवक ने अपना सब कुछ बेच दिया। बारह लाख रुपए लेकर आजाद हिंद फौज के कार्यालय में पहुंचा। सुभाष बाबू ने उस युवक को बांहों में भर लिया। अलग ले जाकर उससे बोले–"पांच लाख इसमें से ले जाओ और अपना कारोबार चलाओ।"

युवक दो कदम पीछे हटा, फिर बोला–"नेता जी, मैं बेईमान नहीं बन सकता। मैंने अपना सब कुछ देश के लिए दिया है, वापस नहीं ले सकता। आप मुझे आजाद हिंद फौज में भर्ती कीजिए।"

दूसरे दिन से वह आजाद हिंद फौज के सिपाहियों में

शामिल हो गया। सभी धर्मों और जातियों के सैनिक इस फौज में कदम से कदम मिलाकर मार्च किया करते थे। उन्हीं दिनों सिंगापुर में नेता जी का जन्मदिन मनाया गया था। तिरंगे फूलों से सजी एक तराजू के पलड़े पर नेताजी को बैठाया गया। शंख बज उठे, महिलाएं देश-प्रेम के गीत गाने लगीं। एक गुजराती महिला ने जीवन-भर की कमाई, सोने की पांच ईंटें, तराजू पर धर दीं। अब तो उस पलड़े में सोना-चांदी, हीरे-मोती का ढेर लगने लगा। सैनिक 'जयहिंद' और 'दिल्ली चलो' के नारे लगा रहे थे। कानों के बुंदे, गले की मालाएं, अंगूठियां, सोने की घड़ियां तराजू में बराबर चढ़ाई जा रही थीं।

कैप्टन लक्ष्मी स्वामीनाथन किसी महिला को अपने साथ लेकर आईं। उसके बाल खुले थे, आंखें लाल थीं। उसने अपने सुहाग की निशानी पलड़े पर रख दी। कप्तान लक्ष्मी ने बताया—"कल ही खबर आई, इस बहन का पति मोर्चे पर शहीद हो गया।"

नेताजी ने अपनी टोपी उतार दी। बोले—"देवता भी तुम्हारे पति का स्थान लेना चाहेंगे।"

तभी एक वृद्धा आई। सोने के फ्रेम में जड़ी एक तसवीर वह सीने से चिपकाए थी। कहने लगी—"यह मेरे इकलौते बेटे की तसवीर है। उसे अंग्रेजों ने फांसी दे दी।" बुढ़िया आगे न बोल पाई। उसके हाथों से तसवीर गिर गई। शीशा चटक गया। बेटे का फोटो उसने उठा लिया। सोने का फ्रेम तराजू पर चढ़ा दिया। बस, दोनों पलड़े बराबर हो गए।

सुभाष बाबू झट खड़े हो गए। बैंड बजने लगा—"बढ़े चलो, वतन तुम्हें पुकारता।"...जय हिंद!"

बूढ़ा नहीं सीखता

धन्वंतरि जैसा कुशल वैद्य इस धरती पर आज तक नहीं हुआ। वह जिस रोगी को भी दवा-दारु देते, चंगा हो जाता। मुर्दा शरीर में भी प्राण उड़ेल देते थे। लेकिन एक दिन उन्हीं धन्वंतरि की पीठ में एक फोड़ा हो गया। तरह-तरह से उपचार किया, पर सब बेकार।

घाव में पीड़ा बहुत थी। वह सोचने लगे–"मैंने हर तरह के मरीजों को ठीक किया है, पर अपने ही घाव का इलाज नहीं कर पा रहा हूं। कहीं ऐसा न हो, यही मेरी मृत्यु का कारण बने।"

लेकिन तभी मानो किसी ने उन्हें झकझोरा–"तूने अनेक नई-नई जड़ी-बूटियों की खोज की है। कभी रोग से हार नहीं मानी। फिर आज ही ऐसी निराशा क्यों। घाव को ठीक करने के लिए किसी चमत्कारी दवा की खोज कर।"

ऋषि धन्वंतरि उठकर खड़े हुए। जरूरत की थोड़ी-सी चीजें झोले में डालीं। डंडा हाथ में लिया और चल दिए–खोज-यात्रा पर। जंगल-जंगल घूमते। फिर जहां-तहां जड़ी-बूटी खोजते। कूट-पीसकर घाव पर लगाते। उनका प्रभाव देखते।

सही औषधि की खोज में यहां-वहां काफी भटकते रहे।

कहीं हिंसक जानवरों से बचे, कहीं पांवों में कांटे चुभे। कई जगह मरते-मरते बचे। तन से, मन से थक गए। पर भीतर से जैसे कोई कहता—"फिर साहस कर, नई खोज कर।"

लेकिन आखिर निराश हो गए। अपने आश्रम की ओर लौट चले। आश्रम कुछ दूर था। चट्टान पर बैठकर सुस्ताने लगे।

अचानक आवाज आई—"मैं आपसे कह रही हूं। मैं आपके रोग की औषधि हूं।"

धन्वंतरि हक्के-बक्के हो बोले—"कौन हो तुम ? कहां हो ?"

"आपके चरणों के पास ही एक जड़ी हूं।"

चिकित्सा के इतिहास में वह दिन अनोखा था। उस जड़ी के पत्तों से धन्वंतरि का घाव जल्दी ही ठीक हो गया। यह खोज रोगियों के लिए नई थी। नया वरदान बनकर आई थी।

पर धन्वंतरि के मन में रह-रहकर एक सवाल उठता। उन्होंने उस जड़ी से ही पूछा—"तुम तो मेरे आश्रम के पास ही थीं। पर मैं तुम्हारी खोज में जंगलों में, पहाड़ों पर, घाटियों में भटकता रहा। पैरों में छाले पड़ गए। बुरी तरह थक गया। क्या तुम पहले नहीं बोल सकती थीं ? मुझे इतने कष्ट तो नहीं उठाने पड़ते।"

जड़ी कुछ क्षण मौन रही। फिर मिठास-सा घोलते हुए बोली—"आपकी लगन और श्रम देखकर ही तो मैं प्रकट हुई हूं। सचमुच आपको बहुत श्रम करना पड़ा। इस बीच

आपने बहुत कुछ, नई-नई कितनी ही बातें सीखीं।"

"अरे, मुझ बूढ़े को भी सीखने के लिए कुछ बचा रह गया था! मैं जीवन-भर इसी में तो लगा रहा हूं।" धन्वंतरि बोले।

जड़ी ने कहा—"महाराज, क्षमा करें। जो जब तक सीखता है, बूढ़ा नहीं होता। सीखने का काम छोड़ा या जिसने मान लिया कि उसकी शिक्षा पूरी हो गई, बस वही बूढ़ा हो गया। आप तो अभी जवान हैं।"

जड़ी आगे कुछ नहीं बोली। अब ऋषि धन्वंतरि बैठे-बैठे सोच रहे थे—"आदमी को सीखते ही रहना चाहिए।"

एक कक्षा, दूसरी कक्षा—फिर आगे, बहुत आगे। पर कक्षाएं खत्म होने पर भी सीखने को बहुत कुछ बचा रहता है। जीवन-भर सीखते रहें—यह सुखी-सफल जीवन की कुंजी है।

तीन सहेली बगिया में

घूम-घूमकर, झूम-झूमकर, फर-फर उड़ती थीं दो तितली—एक थी लाल-लाल और दूसरी पीली। साथ-साथ ही भिन-भिन करती उड़ती थी मधुमक्खी। मौज मनातीं तीनों सहेली फूल भरी बगिया में। आसमान में उसी समय बादल उड़ते थे—धौले-धौले, काले-काले। उन्हें न भाई हंसी-खुशी इन नन्हीं-नन्हीं सहेलियों की। झटपट लाए पानी भर-भर और गिराईं बूंदें टप-टप।

हुईं परेशान तितलियां और मधुमक्खी भी—इधर गईं, उधर गईं। गईं गुलाब के पास—"गुलाब भइया, हमें छिपाओ। बूंदों से हम परेशान हैं।"

"आओ-आओ, तितली लाल! मेरी लाल-लाल पांखुरियों में छिप जाओ।" बोला गुलाब।

"हम हैं तीन सहेली। तुम करते हो भेद-भाव, तो हम न रहेंगी तुम्हारे पास। दूर रहेंगी तुमसे, हम तो दूर रहेंगी।"—बोली लाल तितली।

मौसम था गेंदे का खूब। हर ओर वे पीले-पीले और सुनहरी झूम रहे थे। तीन सहेली एक पौधे के जाकर पास, बोलीं यों—"हम हैं परेशान तड़-तड़ बूंदों से हमें शरण दो—हमें छिपा लो।"

गेंदे ने गर्दन मटकाई। कहने लगा–"आओ-आओ, पीली तितली। मेरे फूलों में छिप जाओ। बूंदों से निर्भय हो जाओ।"

बोली पीली तितली–"मैं न तुम्हारे साथ रहूंगी। तुम करते हो भेद हमारे बीच। इसीलिए हम दूर रहेंगी, तुमसे हम तो दूर रहेंगी।"

तितलियां चली आईं, मधुमक्खी भी साथ आई। उड़ती-उड़ती अब ये पहुंची मधुमक्खी के छत्ते पर। रानी मक्खी से यों बोलीं–"हम बूंदों से परेशान हैं। हमें शरण दो, हमें छिपा लो।"

रानी बोली–"आओ तुम मधुमक्खी भीतर। इन तितलियों को उड़ जाने दो दूर।"

मधुमक्खी गुस्से से हो गई लाल। किंतु बड़े अदब से रानी से बोली–"मैं अकेली नहीं आऊंगी भीतर। मेरे संग सहेली मेरी। वे भीगें, हों परेशान। मैं सुख से बैठूं–ऐसा तो हम नहीं करेंगे।

एक तितली थी लाल और दूसरी पीली। तीसरी थी मधुमक्खी, उनकी प्रिय सहेली। तीनों ने निश्चय कर डाला, "हम न रहेंगें इस बगिया में। चाहे जितने बादल गरजें–घरड़-घरड़।"

पानी बरसे–धड़-धड़-धड़।

आंधी आए–हहर-हहर।

हम तो रहेंगी साथ-साथ ही। फर-फर फर-फर, भिन भिन भिन। हम तो रहेंगी साथ-साथ ही।

उनका यह दृढ़ निश्चय पहुंचा आसमान तक। बादल

लगे सोचने । तभी एक ओर से सूरज निकला । आसमान में इंद्र-धनुष दे गया दिखाई । तरह-तरह के रंग, सभी उसमें थे साथ-साथ सहेलियां तीनों थीं खुश बहुत—फर-फर उड़ती थीं ।

रानी खुश महारानी खुश

एक थी रानी। रानी की थी बुढ़िया नानी। उसे कहते थे महारानी। महारानी की थी एक खूसट नौकरानी। वह थी बड़ी चुगली खानी। महल में एक थी मिसरानी। तरह-तरह के बढ़िया-बढ़िया पकवान बनाती। लप-लप, चप-चप महारानी खाती। नौकरानी भी खाती—पर खाने में कुछ न कुछ खोट बताती। मिसरानी को डांट खिलवाती।

रोज-रोज की डांट-डपट से मिसरानी हुई हैरान-परेशान! पड़ गई बीमार। अब कौन बनाए खाना? कैसे बनें पकवान? रानी भूखी, महारानी भी भूखी। बूढ़ी नौकरानी से कहा—"बना भोजन।" वह रसोईघर में गई। दाल चढ़ाई। भात पकाया हलुवा-खीर-पूड़ी—सब तैयार किए। खाना परोसा रानी को। रानी खाए ना थू-थू करे। महारानी खाने बैठी—थू-थू करे। मीठे में नमक, नमकीन में मीठा। नौकरानी ने ऐसा क्यों किया तमाशा?

महारानी ने नौकरानी को बुलाया। गुस्से में गरजी-बरसी। आज नौकरानी भूल गई चुगली खानी। करने लगी —आयं-बायं, आऊं-बाऊं। वहीं बैठी थी एक बिल्ली बोलने लगी—"मैं आऊं, मैं आऊं।" नौकरानी अपना गुस्सा उतारने लगी, लपकी उसे मारने। उधर से रानी आई। हबड़-दबड़

में रानी से टकराई। रानी ने तगड़ी डांट पिलाई। कर दी महल से विदाई।

तीसरे दिन मिसरानी ठीक हो गई। महल में आई। बढ़िया रसोई बनाई। रानी खुश, महारानी खुश।

चुगली खानी नौकरानी तो जा ही चुकी थी।

चुगली नहीं करोगे, तो खुश-खुश रहोगे।

तालियां ही तालियां

एक राजा थे अनंत वर्मा। तरह-तरह के खेलों में उनकी रुचि थी। हर साल उनके राज्य में एक पखवाड़ा खेलों के लिए होता। कुश्ती, मुष्टि-युद्ध, घुड़सवारी, कंदुक-क्रीड़ा, तीरंदाजी, जल-क्रीड़ा—और भी न जाने कितने तरह की प्रति-योगिताएं होतीं।

इस बरस के खेल होने वाले थे। दूर-दूर से और पास से खिलाड़ी एकत्र हो रहे थे। अपने-अपने प्रिय खेलों के लिए अपने नाम लिखा रहे थे। नाम देने की अंतिम तारीख थी। उसी दिन पतला-दुबला एक आदमी वहां आया। नाम था उसका हरिदास। उसने भी अपना नाम प्रति-योगिताओं के लिए लिखवाया। किसी एक खेल के लिए नहीं, सभी खेलों के लिए। पर उनसे एक प्रार्थना भी की—"मैं सबसे अंत में नाम लिखा रहा हूं। अतः मुझे हर खेल के अंत में ही अवसर दिया जाए।"

कोई विरोध भला क्यों करता! मुकाबले शुरू हुए। तीर चलाकर एक ऊंचे पेड़ की फुनगी को काटकर गिराना था। हवा चल रही थी। कोमल फुनगी कांप रही थी। एक के बाद एक निशानेबाज आए। किसी को सफलता नहीं मिली। अंत में हरिदास का नम्बर आया। दर्शक व्यंग्य से



हंसने लगे–"बड़ा आया निशानेबाज। अरे, यह क्या निशाना लगाएगा ?"

लेकिन हुआ उल्टा ही। हरिदास ने निशाना साधा और तीर छोड़ दिया। देखते ही देखते फुनगी कटकर गिर पड़ी। हिकारत से देखे जाने वाले हरिदास के लिए, हर ओर से तालियां बज उठीं।

खेल चलते रहे। हरिदास हर खेल में बाजी मारता रहा। घुड़सवारी की सबसे कठिन प्रतियोगिता हुई। आंखों पर पट्टी बांधकर और हाथ बांधे हुए घुड़सवारी करनी थी। अच्छे-अच्छे धावक भी औंधे मुंह गिर गए–कोई यहां गिरा, तो कोई वहां। अब सभी सांस रोके देख रहे थे–अकेला हरिदास घोड़े पर बढ़ा जा रहा था। और लो, वही जीत भी गया।

महाराजा अनंत वर्मा ने खिलाड़ियों को इनाम बांटे। सबसे अधिक तालियां बजीं तब, जब हरिदास ने इनाम लिया। पर सभी हैरान थे, परेशान भी–आखिर हरिदास है कौन ? क्या कोई जादूगर है !

महाराजा ने हरिदास से पूछा–"भई, खिलाड़ी रत्न ! तुम यह तो बताओ, तुम्हारी इस बेजोड़ जीत का रहस्य क्या है ?"

हरिदास मुस्कराया। बोला–"महाराज, मैं हरि का दास हूं। वह मेरे भीतर है। मैं न खेलता हूं, न जीतता हूं। उसी का भरोसा मुझे जिता देता है।"

महाराजा अनंत वर्मा प्रसन्न हुए। कहने लगे–"युवक हरिदास, ईश्वर तो सबके भीतर है, पर तुम-सा विश्वास

कितनों को है ?"

हरिदास-सा विश्वास हम अपने में जमा सकें, तो फिर हमारे लिए हर ओर सफलता होगी। हमारा सारा प्राचीन साहित्य यही संदेश संजोए है।

कोई नहीं बोला

नंदगढ़ के राजा थे चंदनसिंह। काफी धन-दौलत थी उनके पास। दरबारियों ने सुझाया कि वह क्यों न प्रजा को कुछ मोहरें दे दें, ताकि उनकी वाह-वाही हो।

राजा चंदनसिंह ने घोषणा करा दी—"दरबार में मोहरों का ढेर लगा दिया गया है। सप्ताह में एक दिन कोई भी व्यक्ति आकर दोनों हाथों में मोहरें लेकर जा सकता है। जिसके हाथ से मोहरें जमीन पर गिरेंगी, तो उसे मृत्यु दंड मिलेगा।"

कितने ही लोग आते, मोहरें ले जाते। कई लोग तो मौज करने लगे। कई बेचारे मारे भी गए। एक दिन तीन मित्र उस नगर में आए। तीनों मुसीबत में थे। वे भी मोहरें लेने पहुंच गए।

भाग्य की बात—एक एक कर उन्होंने मोहरें उठाईं। एक-एक दो-दो मोहरें हाथ से नीचे लुढ़क गईं। बस सैनिकों ने उन्हें घेर लिया।

जिस दिन उन्हें सजा दी जानी थी, उनसे अंतिम इच्छा पूछी गई। वे बोले—"उन सब लोगों की आंखें निकलवा ली जाएं, जिन्होंने हमारे हाथों से मोहरें गिरती देखीं।"

राजा ने जानना चाहा कि किस-किसने मोहरें गिरती



आपसे बढ़कर कौन

उन दिनों औरंगजेब का राज था। वह कट्टर मुसलमान था। चाहता था, सभी लोग उसके धर्म को मानने लगें। उसने सोचा कि कश्मीर के पंडित मान जाएं, तो बड़ी संख्या में हिंदू धर्म-परिवर्तन कर लेंगे। पंडितों पर जुल्म होने लगे। उनमें खलबली मच गई।

अमरनाथ की गुफा में पंडित एकत्र हुए। सभी ने अपनी-अपनी परेशानी रखी। काफी विचार के बाद इस परिणाम पर पहुंचे कि आड़े समय में गुरु तेगबहादुर ही हम सबकी रक्षा कर सकते हैं। पंडित कृपाराम को अगुवा बनाया गया। पांच सौ पंडित गुरु जी की शरण में आनंदपुर साहब पहुंचे।

गुरु तेगबहादुर ने पंडितों का स्वागत किया। उनकी मुसीबतों को ध्यान से सुना। फिर वह सोच-विचार करने लगे। तभी गोविंद बाहर से खेलकर आए। तब वह नौ वर्ष के थे। तेगबहादुर जी को भीड़ से घिरे देखकर उन्होंने पूछा–"पिताजी, परेशान क्यों हैं?"

गुरु जी बोले–"बेटे, ये कश्मीरी पंडित हैं। ये धर्म की रक्षा के लिए चिंतित हैं। धर्म तभी बच सकता है, जब कोई बलि देने को तैयार हो। पर कोई ऐसा महापुरुष दिखाई

नहीं पड़ता।"

बालक गोविंद सोचता रहा। फिर बोल उठा—"गुरु जी, आपसे बढ़कर कौन है, जो धर्म के लिए बलिदान दे।"

गुरु जी का चेहरा खिल उठा। बोले—"बेटा गोविंद, तुमने मेरी सब चिंता दूर कर दी।" झट गुरु महाराज ने पंडितों से कहा—"अब आप परेशान न हों। बादशाह पहले मुझे मुसलमान बनाए। आप लोग किसी से न डरें। न किसी के दबाव में झुकें।"

गुरु तेगबहादुर आनंदपुर साहब से चल दिए। वह आगरा पहुंचे, तो उन्हें बंदी बना लिया गया। गुरु जी को दिल्ली ले आए। औरंगजेब ने हर तरह के लालच दिए। तरह-तरह से दबाव डाला पर गुरु जी टस से मस न हुए। उनका दो टूक उत्तर था—"मैं स्वयं को बचाने के लिए धर्म नहीं छोड़ सकता।" गुरु जी ने बादशाह की हर बात को ठुकरा दिया।

वह दिन भी आया, जब उन्होंने हंसते-हंसते अपना बलिदान दे दिया। दिल्ली का गुरुद्वारा शीशगंज आज भी उनके अनोखे त्याग की कहानी कह रहा है। जनता ने गुरु तेगबहादुर को "हिंद की चादर" कहकर सम्मान दिया।

धर्म पर बलिदान देना बड़ी बात है। इसी तरह देश पर वीर ही प्राण निछावर किया करते हैं। हम भी देश के लिए तन-मन-धन देना सीखें।

अधिक कीमत नहीं

बरसों पुरानी घटना है। जौहरी बाजार की दुकानें सवेरे ही खुल गई थीं। अभी गद्दी पर बैठने वाले यानी सेठ नहीं आए थे। एक अमरीकी खरीददार एक दुकान पर पहुंचा। उसने हीरा खरीदने की बात कही। मुनीम ने छोटे-बड़े कितने ही हीरे दिखाए। उनमें एक अच्छा हीरा अमरीकी ने छांट लिया। मुनीम ने उसकी कीमत बताई—छह हजार रुपए। उसने कीमत दी। नाम-पता बही में दर्ज कराया। झटपट अपनी राह ली।

घंटे-भर बाद सेठ जी आए। मुनीम ने प्रसन्न होते हुए, उन्हें सवेरे की बिक्री का ब्यौरा दिया। मुनीम जानता था, हीरा बेचने में अच्छा मुनाफा कमाया है, पर उसे लगा—सेठ कुछ चिंता में पड़ गए। सेठ ने उस अमरीकी का नाम-पता बही में देखा। उससे मिलने होटल जा पहुंचे।

अमरीकी ने सेठ को अपने कमरे में बुलवा लिया। सेठ ने आते ही उसे बारह सौ रुपए दिए। बोले—"श्रीमान्, मुनीम ने आपसे अधिक कीमत ले ली। मैंने वह हीरा चार हजार में खरीदा था। मैं बीस प्रतिशत मुनाफा लेता हूं, इसलिए यह रकम लौटाने आया हूं।"

यह सुन, अमरीकी हैरान रह गया। उसने कहा कि सौदा

हो गया, सो हो गया लेकिन सेठ टस से मस न हुए। उन्होंने रुपए लौटाए और विदा ली।

अमरीकी ने उस सेठ की चर्चा अनेक जगहों पर की। अगले वर्ष सेठ को विदेश से इतने आर्डर मिले कि वह मालामाल हो गए।

ईमानदारी का फल कितना मधुर होता है ? गलत तरीकों से कुछ हम पा लेते हैं, वह अक्सर हमारे पास टिकता नहीं।

खन खन खनक

किसी नगर में एक ब्राह्मण था। चार बेटे थे उसके। ब्राह्मण गरीब था। बेटों ने एक दिन सलाह की। बोले—"ऐसे जीने को धिक्कार है। चलो, कहीं ऐसी जगह चलें, जहां खूब धन हाथ लगे।"

चारों घर छोड़कर चल दिए। चलते-चलते अवंती जा पहुंचे। वहां नदी में नहाए। महाकाल मंदिर में पूजा की। मंदिर से निकले तो भैरवनाथ योगी से मुलाकात हो गई। ब्राह्मण पुत्रों ने योगी को प्रणाम किया। बोले—"महाराज, गरीबी के कारण हमने घर छोड़ दिया। अब कृपा कीजिए। वह जगह बताइए, जहां हमें या तो धन मिले या फिर मौत ही मिले।"

भैरव सिद्ध योगी थे। उनके मन में दया जागी। जरा-सी रुई ली, बत्तियां बनाईं। बोले—"लो, ये चार बत्तियां। सीधे हिमालय की राह पर जाओ। जहां कोई बत्ती हाथ से छूटकर गिरे, वहीं खोदना। तुम्हें खजाना हाथ लगेगा।

चारों भाई योगी की बताई राह पर चल दिए। सौ मील चलने पर एक बत्ती गिर गई। बस, उन्होंने खुदाई करनी शुरू कर दी। खोदते गए। देखा कि वहां तांबा-ही-

तांबा है। छोटा भाई बोला—"मैं तो यहीं रहूंगा। तांबा कसेरों को बेचूंगा, तो धन मिलेगा।"

तीन भाई आगे बढ़े। कुछ दूर चलने पर फिर एक बत्ती छूटकर गिरी। खुदाई करने पर वहां चांदी निकली। एक भाई वहीं ठहर गया। अब दो भाई आगे बढ़ चले। आगे जाने पर सोना मिला। वहां तीसरा भाई रुक गया। उसने बड़े भाई को भी वहां रोकना चाहा, पर सबसे बड़ा भाई बोला—"मैं तो और आगे जाऊंगा। मेरा भाग्य बलवान है। मुझे हीरे और लाल मिलेंगे।"

चलता-भटकता वह जंगल से गुजर रहा था। उसने एक आदमी को देखा। आदमी बहुत दुःखी नजर आ रहा था। बड़ा भाई उसके पास गया। बोला—"मित्र, तुम्हारे सिर पर यह चक्र-सा क्या घूम रहा है? तुम यहां जंगल में क्या कर रहे हो?"

इतना कहना था कि उसके सिर पर घूमता चक्र बड़े भाई के सिर पर घूमने लगा। वह आदमी बोला—"मैं तो झंझट से छूट गया। इस जंगल में कुबेर का शाप लगा है। जो आकर पूछता है, उसी के सिर पर चक्र घूमने लगता है। वह यहां उलझ जाता है। उसे लगता है कि रुपए खन-खन खनक रहे हैं, पर धन उसे मिलता नहीं।"

खड़े रहे अड़े रहे

एक सामंत चला जा रहा था। जंगल में जाते-जाते अचानक ठिठक गया। बोला—"अरे, यहां इतनी सुंदर मूर्ति और उसके हाथ में सोने का कलश भी।"

तभी दूसरी तरफ से दूसरा सामंत उधर आ निकला। वह भी मूर्ति को देखकर ठगा-सा रह गया। अचानक उसके मुंह से निकल पड़ा—"अरे, इस जंगल में यह मूर्ति कहां से आई ? इसके हाथ में चांदी का सुंदर कलश भी है।"

पहले सामंत ने सुना, तो बोला—"चांदी का नहीं, कलश सोने का है मूर्ख !"

बस, फिर क्या था। दोनों ने तलवारें खींच लीं। एक-दूसरे को मारने के लिए उतावले हो उठे।

ठक-ठक, ठक-ठक, कुछ ही देर में लाठी टेकती, एक बुढ़िया वहां आ पहुंची।

"ठहरो, ठहरो ! क्यों एक-दूसरे से दुश्मनी निकालना चाहते हो ?" बुढ़िया बोली।

दोनों सामंत जहां-के-तहां रुक गए। एक ने कहा—"कलश सोने का है।"

दूसरे ने कहा—"कलश चांदी का है।"

बुढ़िया बोली—"तुम दोनों ही ठीक कहते हो ?"



"सो कैसे !" उन्होंने झट पूछा।

बुढ़िया ने बताया—"आधा कलश सोने का है और आधा चांदी का। तुम दोनों अपनी-अपनी जगह बदलकर खड़े हो जाओ, तब देखो।"

दोनों सामंत ने वैसा ही किया। बुढ़िया की बात बिल्कुल सच थी।

हम अपनी जगह पर ही खड़े रहें, अड़े रहें, मरने-मारने को तैयार हो जाएं, यह ठीक नहीं। आगे बढ़कर सचाई को देखना-परखना भी सीखें!

)

कुछ न हो सब कुछ

हरा-भरा घना जंगल था। उसमें बीचों-बीच एक बगीचा था। बगीचे के बीच में छोटा-सा महल था। महल परी राजा का था। राजा-रानी रहते थे वहां। उनका एक परी कुमार भी था। राजकुमार धीरे-धीरे बड़ा हो गया।

एक दिन परी रानी ने कहा—"बेटा, अब तुम विवाह के लायक हो गए। चाहो तो अपने लिए दुलहन चुन सकते हो। पर लड़की ऐसी हो, जो हम सबसे प्रेम रखे। सेवा करे। जाओ, तुम खुद ही खोज करो।"

परी कुमार सुंदर-सलोना था। जो भी लड़की उसे देखती, वही ब्याह करना चाहती। लेकिन परी रानी ने अपनी जादुई छड़ी उससे छुआ दी, तो बूढ़ा-सा मालूम होने लगा। बदसूरत भी दिखाई देने लगा। फिर रानी ने जादुई छड़ी बेटे को दे दी। बोली—"लो, इसे भी अपने साथ रखना। जरूरत पड़े या मुसीबत में हो, तो इससे काम लेना।"

बदसूरत बूढ़ा चल दिया। जंगल पार किया। एक कस्बे में पहुंचा। वहां कुछ शरारती छोकरे उसे तंग करने लगे। उसे प्यास लग आई थी। वह कुएं पर पहुंचा। कई लड़कियां पानी भर रही थीं। पर किसी ने उसे पानी नहीं

पिलाया। वह एक घर के दरवाजे पर पहुंचा। कुछ खाने को मांगा। एक लड़की वहां आई। उसने मुंह बिचकाते हुए, उसे भला-बुरा कहा।

दूसरे दरवाजे पर गया। उस घर की मालकिन ने नौकरों को बुलाया और उनसे बोली—"इसकी मरम्मत करो। चोर-उचक्का मालूम होता है।" नौकरों ने उसकी खूब खबर ली। बूढ़े की आंखों में आंसू आ गए। उसको चोट भी लगी थी। वह एक तरफ बेसुध-सा पड़ा रहा।

कुछ देर बाद एक भिखारिन लड़की उधर से गुजरी। उसने बूढ़े को सहारा दिया। उसे अपने साथ ले चली। कस्बे के बाहर एक टूटी-फूटी झोंपड़ी थी उसकी। मां-बाप मर गए थे। भाई-बहन कोई था नहीं। भिखारिन लड़की जो रूखा-सूखा मांगकर लाई थी, उसी में से कुछ बूढ़े को खिलाया। जंगली पत्ते पीसकर उसकी चोटों पर लगाए।

दो-तीन दिन वह वहीं रहा। फिर एक दिन बोला—"अच्छा, अब मैं चलता हूं। तुमने मेरे लिए परेशानी उठाई।"

भिखारिन की आंखें भर आईं। बोली—"क्यों जाते हो? मेरे पास ही रहो न।"

अचानक बूढ़ा बोला—"तुम और मैं साथ-साथ रह सकते हैं, पर तुम्हें शादी करनी होगी।"

"शादी! मैं भिखारिन हूं। मेरे पास है ही क्या?"

तभी बूढ़ा गायब हो गया। अब परी राजकुमार सामने खड़ा था। उसने अपनी छड़ी छुआई, तो भिखारिन के कपड़े कीमती और नए हो गए। फिर वे दोनों खुशी-खुशी चल दिए परी महल की ओर।

किसी के पास कुछ न हो, तब भी अच्छे गुणों का खजाना हो सकता है।

शहर की नहर

दिल्ली में एक जगह है तीस हजारी। कभी वहां तीस हजार पेड़ लगे थे। हर तरफ हरा-भरा था। उन दिनों यहां यमुना की नहर लाई गई। यही नहर लाल किले तक गई। लाल किले में इसकी अजब बहार थी, अनोखी शान थी। यहां नहर में संगमरमर जड़ा था। उसके हौजों में कीमती पत्थर की पच्चीकारी थी। फूलों में एक-एक छेद रखा गया, जहां से फव्वारे छूटते। रंगीन मछलियां तैरती रहतीं। उन्हें सोने के छल्ले पहनाए गए थे। मोती महल, दीवाने खास, बड़ी बैठक, रंगमहल—यहां तक कि बादशाह के सोने के कमरे में भी वह पहुंच गई। यहां इसे नहर-ए-बहिश्त (स्वर्ग की नहर) कहा जाता था।

किले से निकलकर नहर फैज बाहा (आज का दरिया-गंज) में आगे बढ़ी। शहर और किले में नहर का पानी आया, तो लोग फूले न समाए। खूब धूम-धाम हुई, रोशनी की गई। सारा नगर जगमगा उठा। पर एक बुढ़िया के घर में अंधेरा गुप्प। शाही सिपाही बुढ़िया के घर में घुस गए। पूछा—"ओ माई, तुझे नहर आने की खुशी नहीं है।"

ठुनुककर बुढ़िया बोली—"अरे, तुम कुछ न समझोगे!

बादशाह सलामत से कहना कि जश्न बंद कराएं। यह नहर बीमारियां फैलाएगी। नागिन बनकर, अनगिनत दिल्ली वालों का काल बनेगी।"

बुढ़िया की बात अनसुनी कर दी गई। पर यह सच है कि नहर आने के बाद दिल्ली में बड़े-बड़े मच्छर बहुत हो गए। बीमारियां फैलीं। हजारों लोग मरे भी। नहर आई थी, समझा दिल्ली को वरदान मिल गया, पर उसकी गंदगी ने न जाने कितने घरों की खुशियां छीन लीं।

सफाई है तो सब कुछ है। गंदगी है तो दलिद्दर है, बरबादी है। सफाई अपने शरीर से शुरू होती है, फिर घर-आस-पड़ोस, गांव-शहर—सब जगह ही रखनी होती है।

झूठ का अंगार

माधोपुर के जमींदार राय साहब का खास नौकर था–गोविंद। वह अठारह साल का जवान था। राय साहब गोविंद को बहुत प्यार से रखते थे। कभी उससे कोई गलती हो जाती, तो बेटे की तरह उसे समझा देते थे।

एक दिन राय साहब की बेटी और पड़ोसी गांव के जमींदार के बेटे का रिश्ता पक्का करने की रस्म पूरी करने का दिन तय हुआ। पर कुछ कारणों से यह मुहूर्त कुछ दिनों के लिए टल गया था। यह खबर पहुंचाने के लिए गोविंद से राय साहब ने कहा।

गोविंद जाने के लिए तैयार हुआ, तो राय साहब की पत्नी ने उसे कई तरह के काम सौंप दिए। उन कामों को करने में काफी समय लग गया। सांझ होने में कुछ ही देर रह गई। उस गांव का रास्ता ऊबड़-खाबड़ था। अब वहां जाकर वापस आना संभव नहीं था।

उसे चिंतित देख, बूढ़ा नौकर मोती उसके पास आया। बोला–"सूरज डूबने ही वाला है। जाते-जाते अंधेरा हो जाएगा। रास्ते में खतरा भी है। इसलिए आज रुक जाओ। रस्म की तिथि में अभी चार दिन बाकी हैं। कल बीमारी का बहाना बनाकर छुट्टी ले लेना। फिर जाकर वहां

समाचार दे आना। शहर से लौटकर यदि राय साहब पूछें, तो बता देना, समाचार दे आया हूं।"

यह सलाह गोविंद मान गया। लेकिन मन में यह बराबर खटकता रहा।

राय साहब ने शहर से आते ही पूछा—"गोविंद ! क्या तुमने खबर पहुंचा दी ?"

"जी, मालिक !" गोविंद ने उत्तर दिया।

राय साहब ने फिर पूछा—"तुमने यह खबर जमींदार को दी या घर में किसी और को।"

"मालिक ! जमींदार साहब हवेली में थे। उन्हीं को समाचार दे आया हूं।"

सुनकर जमींदार साहब सोचने लगे—"जमींदार साहब ने क्या कहा ?"

"उन्होंने कहा, जो तुम्हारे मालिक कहेंगे, वैसा ही करेंगे।" गोविंद ने निःसंकोच उत्तर दिया।

"मैंने सुना है, उस गांव के रास्ते में पड़ने वाली नदी में बाढ़ आ गई है। तुम उस गांव में किस रास्ते से गए ?"

गोविंद बेझिझक बोला—"मालिक ! मैं तैरना जानता हूं। तैरकर नदी पार की।"

राय साहब फिर बोले—"गोविंद ! जमींदार साहब की हवेली के पिछवाड़े आम का एक पेड़ है। क्या उसमें मंजरी लग गई है ?"

इस प्रश्न को सुनकर वह थोड़ा अटका। उसने अपना दिमाग लड़ाया। मंजरी लगने का यह मौसम था ही। बस, उसने झट कहा—"मालिक ! हां, मंजरी की महक फैल

रही थी।"

राय साहब ने कड़ी नजर से उसकी ओर देखते हुए कहा—"गोविंद ! तुमने झूठ बोलना कब से सीख लिया ?"

यह सवाल सुनकर गोविंद ने सोचा कि मालिक ने उसका झूठ पकड़ लिया है। वह डर से थर-थर कांपने लगा।

राय साहब मुस्कराते हुए बोले—"हो सकता है, किसी कारण से तुम खबर पहुंचाने न जा सके। यही बात पहले बता देते। मैं तुम्हें कल भेज देता। लेकिन तुम्हें झूठ का खजाना गढ़ना पड़ा।"

गोविंद उत्तर में सिर झुकाकर हाथ जोड़े, सिर्फ कांपता रहा।

"शहर में ही अचानक मुझे जमींदार साहब मिल गए। मैंने मुहूर्त के बदलने का समाचार उन्हें बता दिया। लेकिन तुमने कहा, जमींदार साहब गांव में हैं। तभी मैं समझ गया, तुम झूठ बोल रहे हो।"

गोविंद का झुका हुआ सिर झुका ही रह गया। राय साहब उसे डांटकर बोले—"आज से फिर कभी झूठ नहीं बोलना। झूठ अंगार के समान है। यह फैलता ही चला जाता है। सब कुछ जला देता है।"

पंडित चुप

उद्दालक जाने-माने ऋषि थे। उनका एक शिष्य कहोड़ लिखने-पढ़ने में फिसड्डी था। पर गुरु उद्दालक की सेवा खूब करता था। दूसरे शिष्य उसकी खिल्ली उड़ाते। लेकिन गुरु खुश थे। उन्होंने अपनी बेटी का ब्याह कहोड़ से कर दिया।

कहोड़ के एक पुत्र हुआ। पुत्र शरीर से टेढ़ा-मेढ़ा था, इसीलिए मां-बाप दुःखी हो उठे। उन्होंने नाम रख दिया—अष्टावक्र।

अष्टावक्र बहुत बुद्धिमान निकला। बारह साल का होने तक उसने वेद-वेदांग सब पढ़ डाले।

मिथिला में राजा जनक राज करते थे। वहां बड़े-बड़े पंडित शास्त्रार्थ करने वाले थे। अष्टावक्र भी अपने भानजे के साथ जा पहुंचे। पर उन्हें तो द्वारपाल ने रोक दिया। बोला—"यहां बालकों का क्या काम? वेदों के विद्वान ही भीतर जा सकते हैं।"

अष्टावक्र बोले—"शक्ल-सूरत या आयु से ही कोई विद्वान नहीं बनता। महाराजा जनक से कहो, मुनि अष्टावक्र आए हैं।"

द्वारपाल चुप। भीतर पहुंचे अष्टावक्र, तो कई पंडित इस

टेढ़े-मेढ़े लड़के को देखकर हंसने लगे। तभी अष्टावक्र ने भी ठहाका लगाया। जनक ने उसकी तरफ देखा तो बोले— "महाराज, सुना था आपकी सभा में विद्वान और पंडित हैं, पर लगता है, यहां चमंकार हैं जो शरीर को ही देखते हैं।"

अब तो पंडितों-महापंडितों की सिट्टी-पिट्टी गुम। उस दिन अष्टावक्र की योग्यता की ध्वजा फर-फर फहर उठी।

किसकी कैसी शक्ल-सूरत है, कैसा शरीर है—यह हम न देखें। योग्यता और ज्ञान से ही किसी को आंकना चाहिए।

नौजवान बिगड़ उठे

हमारे गांव में चौधरी सरूप सिंह थे। एक बार वह तीर्थ-यात्रा पर निकले। उन दिनों पैदल तीर्थ-यात्रा करना पुण्य माना जाता था।

आस-पड़ोस व गांव के बहुत-से लोग विदा देने गांव के बाहर तक आए। चौधरी का कुत्ता मोती भी भीड़ में शामिल था। जब चौधरी आगे चलने लगे, तो कुत्ता कूं-कूं करने लगा। चौधरी ने कुत्ते को साथ ही ले लिया। वह चलते गए, बढ़ते गए। जहां कहीं रात पड़ती, अपना परिचय देकर ठहर जाते।

एक से दूसरे तीर्थ, फिर तीसरे तीर्थ—सरूप सिंह घूमते रहे। साल से ऊपर निकला, तो गांव और घर की याद आई। वापस चल दिए। गांव में खूब स्वागत हुआ उनका। सरूप सिंह ने रस ले-लेकर यात्रा के बारे में किस्से सुनाए।

चौधरी के साथ-साथ उनका कुत्ता लौट आया था। आसपास के सभी कुत्तों की पंचायत जुड़ी। एक कुत्ता बोला, "मालिक ने यात्रा में तुम्हारा ख्याल भी रखा या यों ही तुम दुम हिलाते भूखे-प्यासे घूमते रहे?"

मोती बोला—"मालिक की खातिर हर जगह होती थी, साथ में मुझे भी खाने-पीने को अच्छा मिलता था। पर राह

में जहां भी कुत्ते मिल जाते, वे 'भों-भों' करके मुझ पर टूट पड़ते थे।"

यह सुनना था, कई नौजवान कुत्ते बिगड़ पड़े। वे बिरादरी के बारे में कोई कड़वी बात सुनने को तैयार न थे। उन्होंने भों-भों करके सभा भंग कर डाली। दूसरी ओर चौधरी की इज्जत गांव में पहले से अधिक होने लगी। गुणी काम को पहचानते हैं, मूर्ख उसकी कद्र नहीं करते।



काला घोड़ा सफेद घोड़ा

दो राजकुमार थे—महेन्द्र और राघव। सिंहासन खाली हुआ तो महेन्द्र राजा बन गया। एक दिन महेन्द्र के दरबार में घोड़ों का व्यापारी आया। उसने महाराजा को दो घोड़े भेंट किए। एक का रंग काला, दूसरे का दूध-सा सफेद। महेन्द्र ने व्यापारी को इनाम देकर विदा किया। सफेद घोड़ा अपने पास रखा, काला घोड़ा छोटे भाई राघव को दे दिया।

राघव के मित्रों ने उसे भड़काया—"राजा ने सुंदर घोड़ा अपने पास रख लिया, उसी तरह जैसे राज्य की हर अच्छी चीज उसके अधिकार में है।" राघव को भी सफेद घोड़ा भा गया था। बात छोटी थी, पर तीर-सी चुभ गई। धीरे-धीरे दोनों भाइयों में मनमुटाव बढ़ चला। मंत्री ने बीच-बचाव कराना चाहा, पर भड़काने वाले स्वार्थी लोगों की चाल चल गई। एक दिन राघव राजधानी से चला गया। फिर खबर आई—उसने विद्रोह कर दिया है।

बूढ़े सेनापति ने महेन्द्र को समझाना चाहा—"तुम्हारा छोटा भाई बहकावे में आ गया है।"

"वह मेरा भाई नहीं, राजद्रोही है। मैं उसे मृत्यु दंड दूंगा।" महेन्द्र ने क्रोध में कहा।



तालाब भर गया

बरसात के दिन—रिमझिम-रिमझिम। मेंढक टर्र-टर्र टर्राते थे। टर्राते थे या गाते थे—कौन जाने। छोटे-छोटे, प्यारे-प्यारे, ऊदे-काले बादल नीचे, धरती के पास उड़ रहे थे—नहीं, आंख-मिचौनी खेल रहे थे। इधर कितने ही मेंढक टर्र-टर्र करके हल्ला-गुल्ला मचाए हुए थे। बादलों के खेल में बाधा पड़ी। बड़े-से एक बादल ने पूछा—"अरे, टर्रु, मटर्रु, क्यों आसमान सिर पर उठाए हुए हो?"

एक मेंढक बोला—"हम तो तुम्हारी ही डोंडी पीट रहे हैं कि बादल आ गए, बादल आ गए…।"

बादल ने कहा—"हमें तुम्हारी मदद नहीं चाहिए, कतई नहीं चाहिए। हम बूंदें गिराएंगे, तो सभी अपने आप जान जाएंगे—हम आ गए। तुम अपना काम देखो, समझे।"

मेंढक नम्र होकर बोला—"दादा, ठीक कहते हो तुम। पर तुम्हारी अगवानी करने में टर्र-टर्र करते हैं, तो बहुतों का ध्यान हमारी ओर चला जाता है, वरना हमें पूछने वाला कौन है।"

बादल मुस्कराया। उसने और बादलों को भी बुला

मंत्री ने गुपचुप राघव को संदेश भेजा, तो उसने भी समझौते से मना कर दिया। एक दिन दोनों भाई नंगी तलवारें लिए आमने-सामने आ डटे। महेन्द्र सफेद घोड़े पर सवार था और राघव काले घोड़े पर। युद्ध छिड़ गया।

एकाएक महेन्द्र के घोड़े को तीर लगा। वह लड़खड़ा-कर गिर पड़ा। महेन्द्र दूसरे घोड़े पर बैठ गया। तभी राघव के बहुत रोकने पर भी काला घोड़ा सफेद घोड़े के पास आ खड़ा हुआ। थोड़ी देर बाद वह भी घायल होकर गिर पड़ा। देखते-देखते दोनों घोड़ों ने प्राण त्याग दिए। उनके शव पास-पास पड़े थे, जैसे दोनों मरते समय गले मिले हों।

यह दृश्य दोनों भाइयों ने देखा। महेन्द्र ने कुछ सोच, युद्ध बंद करने का आदेश दिया। वह और राघव दोनों ही घायल थे। फिर दोनों भाई मृत घोड़ों के पास जा खड़े हुए। महेन्द्र ने कहा—"राघव, ये पशु हैं और हम इंसान। ये मृत्यु में भी अलग नहीं हुए।"

"हां, भैया।" राघव का गला रुंधा हुआ था।

दोनों भाई एक-दूसरे से लिपट गए। दोनों की आंखें गीली थीं। आंसुओं ने मन का मैल धो दिया। बिछड़े भाई फिर एक हो गए। नगर के बीचोंबीच उन घोड़ों की मूर्तियां लगाई गईं—एक काले पत्थर की, दूसरी सफेद पत्थर की। दोनों सिर-से-सिर मिलाए खड़े थे। उनके पैरों में टूटी हुई दो तलवारें पड़ी दिखाई गई थीं।

तालाब भर गया

बरसात के दिन–रिमझिम-रिमझिम। मेंढक टर्र-टर्र टर्राते थे। टर्राते थे या गाते थे–कौन जाने। छोटे-छोटे, प्यारे-प्यारे, ऊदे-काले बादल नीचे, धरती के पास उड़ रहे थे–नहीं, आंख-मिचौनी खेल रहे थे। इधर कितने ही मेंढक टर्र-टर्र करके हल्ला-गुल्ला मचाए हुए थे। बादलों के खेल में बाधा पड़ी। बड़े-से एक बादल ने पूछा–"अरे, टर्रु, मटर्रु, क्यों आसमान सिर पर उठाए हुए हो?"

एक मेंढक बोला–"हम तो तुम्हारी ही डोंडी पीट रहे हैं कि बादल आ गए, बादल आ गए···।"

बादल ने कहा–"हमें तुम्हारी मदद नहीं चाहिए, कतई नहीं चाहिए। हम बूंदें गिराएंगे, तो सभी अपने आप जान जाएंगे–हम आ गए। तुम अपना काम देखो, समझे।"

मेंढक नम्र होकर बोला–"दादा, ठीक कहते हो तुम। पर तुम्हारी अगवानी करने में टर्र-टर्र करते हैं, तो बहुतों का ध्यान हमारी ओर चला जाता है, वरना हमें पूछने वाला कौन है।"

बादल मुस्कराया। उसने और बादलों को भी बुला

लिया। झड़ी लग गई। कुछ ही देर में तालाब लबालब भर गया।

बड़ों की कृपा से या आशीर्वाद से, कई काम सध जाते हैं। हम उन्हें आदर देना सीखें, उनका प्यार लेना सीखें।

अशुभ नहीं शुभ

दशार्ण के राजा थे वज्रबाहु। उनकी रानी सुमति ने एक सुंदर राजकुमार को जन्म दिया। खूब खुशियां मनाई गईं। पर विधाता की करनी को क्या कहें। रानी और राजकुमार दोनों ही बीमार रहने लगे। राजा ने तरह-तरह से इलाज करवाए, पर सब बेकार। किसी ने राजा वज्रबाहु के दिमाग में शंका बैठा दी—रानी और राजकुमार दोनों ही तुम्हारे लिए अशुभ हैं। बस, एक दिन वज्रबाहु ने भारी मन से उन दोनों को जंगल में छुड़वा दिया।

रानी सुमति जंगल में इधर-उधर भटकने लगी। अचानक एक दिन उधर से एक वणिक गुजरा। उसने रानी और उसके पुत्र भद्रायु को शरण दी। पूरे मन से उनकी चिकित्सा कराई। रानी सुमति तो ठीक हो गई, पर एक दिन भद्रायु चल बसा। रानी सुमति के लिए यह झटका सहन करना बहुत ही कठिन था। वह दहाड़ मार-मारकर विलाप करने लगी। संयोग की बात, वणिक के गुरु शिवयोगी उसी समय वहां आए। उन्होंने हर तरह से उसे समझाया, पर सुमति के आंसू न थम सके।

दुःखी सुमति कह रही थी—"मेरा तो एक ही सहारा था। अब मैं भी पुत्र के साथ अपने प्राण त्याग देना चाहती

हूं। मुझ अभागिन को अंत समय में आप जैसे गुरु के दर्शन हो गए, यही बहुत है।"

शिवयोगी चाहते थे, कैसे भी हो, सुमति का दुःख दूर होना चाहिए। उन्होंने मृत बालक के शरीर से कपड़ा हटाकर देखा। उन्हें लगा कि कुछ किया जा सकता है। उन्होंने मंत्र-तंत्र का सहारा लिया। कुछ जड़ी-बूटियां भी मंगवाईं। उनका रस बालक के मुंह में डाला। लगा, उसमें फिर से प्राण पड़ गए। धीरे-धीरे भद्रायु बिल्कुल भला-चंगा हो गया।

सभी को बहुत खुशी हुई। खासतौर से सुमति तो शिवयोगी जी के चरणों में ही गिर पड़ी। वह बोले—"शिवजी की कृपा से तुम्हारा पुत्र बचा है। अब यह फिर कभी बीमार नहीं होगा। तुम ठीक से इसका पालन-पोषण करो। बड़ा होकर यह अपना राज्य भी पा सकेगा।"

सुमति ने शिवयोगी जी से प्रार्थना की, वह भद्रायु के गुरु बनें। उन्होंने इसे मान लिया। वणिक का सुनय नामक पुत्र था। योगी ने उन दोनों को ही साथ-साथ शिक्षा दी।

अपनी रानी को छोड़कर वज्रबाहु बहुत मनमानी करने लगा। दुराचारी हो गया। उसने कई विवाह किए, पर उनसे कोई संतान नहीं हुई। वह राज-काज में रुचि नहीं लेता था। पड़ोस के एक शत्रु राजा ने दशार्ण पर हमला कर दिया। उसने वज्रबाहु को हराकर बंदी बना लिया।

भद्रायु को भी इसका पता चला। वह अब तक युवक हो गया था। वैसे भी साहसी और सूझ-बूझ में कम न था। उसने अपने मित्र सुनय की मदद से सैनिक जुटा लिए। फिर

शत्रु देश पर हमला कर दिया। वहां के राजा को हरा, अपने पिता वज्रबाहु को मुक्त करा लाया।

वज्रबाहु फिर से अपनी राजधानी में आए। राजगद्दी पर बैठे। उन्होंने अपनी रानी सुमति तथा पुत्र से अपने किए की क्षमा मांगी। फिर उन्होंने पुत्र का राजतिलक कर दिया। वज्रबाहु तथा सुमति आश्रम में चले गए।

राजा वज्रबाहु ने रानी और राजकुमार को छोड़ दिया था। मां-बेटे ने कठिन-से-कठिन समय में भी हार नहीं मानी। मुसीबत पड़ने पर वज्रबाहु का साथ भी दिया। कैसा अनोखा त्याग था रानी और राजकुमार का। उनके आचरण से ही वज्रबाहु बदला।

सुनहरी हिरन

एक था राजा जयवर्धन। एक रोज शिकार को चला। संगी-साथी भी थे। जंगल में विचित्र हिरन दिखाई दिया। धूप में चमचम चमक रहा था सोने की तरह। राजा ने सोचा–"आज इस हिरन का शिकार अवश्य करूंगा।" बस, घोड़े को एड़ लगा दी। जयवर्धन की आंखें भागते हिरन पर टिकी थीं। वह कभी झाड़ियों में छिप जाता, कभी कुलांचें भरता नजर आता। एकाएक उसने सुना–"राजा, जरा ठहरो! मेरी बात सुनो।"

राजा ने गर्दन घुमाई–थोड़ी दूर पर एक साधु खड़े थे। राजा घोड़े से उतर पड़ा। संत के चरण छुए। कहा–"आज्ञा कीजिए ?"

साधु बोले–"राजा, उस सुनहरी हिरन के लालच में मत पड़ो। वह तो विनाश का दूत है। भोले-भाले लोग उसे अजूबा समझकर पीछा करते हैं। हिरन उन्हें ललचाकर अपने पीछे-पीछे सामने वाली पहाड़ी पर ले जाता है। वहां एक जादूगरनी रहती है। वह अपने जादू से पहाड़ी पर जाने वाले को पत्थर की मूरत में बदल देती है।"

"वह जादूगरनी यह काम क्यों करती है ?"–जयवर्धन ने पूछा।



सुनहरी हिरन

एक था राजा जयवर्धन। एक रोज शि
साथी भी थे। जंगल में विचित्र-हि
में चमचम चमक रहा था सोने की
"आज इस हिरन का शिकार अ
को एड़ लगा दी। जयवर्धन की अ
थीं। वह कभी झाड़ियों में छिप
नजर आता। एकाएक उसने
मेरी बात सुनो।"

राजा ने गर्दन घुमाई—
थे। राजा घोड़े से उतर प
"आज्ञा कीजिए ?"

साधु बोले—"राजा, इ
मत पड़ो। वह तो विनाश व
अजूबा समझकर पीछा क
अपने पीछे-पीछे सामने वाली
एक जादूगरनी रहती है। व
जाने वाले को पत्थर की मूरत में

"वह जादूगरनी यह काम क्यों
ने पूछा।

पूरी तरह पाट दिया गया।

उस समय हिरन फिर वहां आया। वह प्यास से लड़-खड़ा रहा था। उसके शरीर की सुनहरी चमक धुंधली पड़ चुकी थी। राजा ने हिरन को पकड़ लिया। फिर साधु के आश्रम में गया। वहां कुएं का मीठा जल पात्र में उसके सामने रख दिया। प्यासा हिरन पानी पीता गया; पानी पीते-पीते उसकी त्वचा की सोने जैसी चमक कम होती गई।

साधु महाराज बोले—"यह चमक जादूगरनी के जादू की थी। जादू का प्रभाव कम हो रहा है।" फिर उन्होंने हिरन का शरीर थपथपा दिया। थोड़ी देर बाद जंगल में आवाज गूंजने लगी—"सोने के हिरन आ जा। सोने के हिरन आ...जा...." हिरन आवाज की दिशा में देखने लगा। राजा जयवर्धन ने धनुष पर तीर चढ़ा लिया। जैसे ही आवाज फिर आई, उसने उसी दिशा में तीर छोड़ दिया।

तीर जादूगरनी के हृदय में जाकर लगा। वह गिर पड़ी। उसके मरते ही पत्थर की मूर्तियां मनुष्य बन गईं। अनिष्टकारी जादू का प्रभाव जाता रहा। साधु ने राजा को आशीर्वाद दिया। राजा हिरन को साथ ले, राजधानी की तरफ चल दिया। अच्छाई के उजाले ने बुराई के अंधेरे का अंत कर दिया था।

साधु बोले—"किसी ने उससे कहा है, जब वह पांच सौ लोगों को इस तरह पत्थर में बदल देगी तो उसे दुनिया का सबसे बड़ा जादू सिद्ध हो जाएगा।"

तब तक सूर्य ढलने लगा था। राजा जयवर्धन को खोजते हुए उनके संगी-साथी वहां आ गए। राजा को सुरक्षित देखकर सबकी जान में जान आई। पर राजा ने राजधानी लौटने से इंकार कर दिया। कहा—"अभी कुछ दिन मैं साधु बाबा के आश्रम में रहूंगा।" राजा के साथी भी वहीं रुक गए।

उस रात राजा सोचता रहा, सोचता रहा। सुबह साधु बाबा को साथ ले, वन में निकल पड़ा। साधु उसे एक सरोवर के पास ले गए। उसका जल एकदम काला था। जल में से विचित्र सुगंध आ रही थी। उसी समय वहीं सुनहरी हिरन सरोवर की तरफ आता दिखाई दिया। साधु ने कहा—"इसी सरोवर का जल पीकर यह हिरन जादूगरनी के वश में रहता है।"

"मैं इसे सरोवर का जल नहीं पीने दूंगा।"—राजा बुदबुदाया। धनुष पर बाण चढ़ाकर निशाना साधने लगा। हिरन तुरंत वहां से भाग गया। राजा धनुष-बाण लेकर वहां जा खड़ा हुआ, जिधर से सुनहरी हिरन पानी पीने आता था। जब-जब हिरन सरोवर की तरफ आता, राजा उसे भगा देता।

फिर राजा और उसके साथियों ने जमीन खोदनी शुरू कर दी। वे सरोवर में मिट्टी डालते जाते। जयवर्धन सबसे अधिक मेहनत कर रहा था। शाम होते-होते सरोवर को

पूरी तरह पाट दिया गया।

उस समय हिरन फिर वहां आया। वह प्यास से लड़खड़ा रहा था। उसके शरीर की सुनहरी चमक धुंधली पड़ चुकी थी। राजा ने हिरन को पकड़ लिया। फिर साधु के आश्रम में गया। वहां कुएं का मीठा जल पात्र में उसके सामने रख दिया। प्यासा हिरन पानी पीता गया; पानी पीते-पीते उसकी त्वचा की सोने जैसी चमक कम होती गई।

साधु महाराज बोले—"यह चमक जादूगरनी के जादू की थी। जादू का प्रभाव कम हो रहा है।" फिर उन्होंने हिरन का शरीर थपथपा दिया। थोड़ी देर बाद जंगल में आवाज गूंजने लगी—"सोने के हिरन आ जा। सोने के हिरन आ'''जा''''" हिरन आवाज की दिशा में देखने लगा। राजा जयवर्धन ने धनुष पर तीर चढ़ा लिया। जैसे ही आवाज फिर आई, उसने उसी दिशा में तीर छोड़ दिया।

तीर जादूगरनी के हृदय में जाकर लगा। वह गिर पड़ी। उसके मरते ही पत्थर की मूर्तियां मनुष्य बन गईं। अनिष्टकारी जादू का प्रभाव जाता रहा। साधु ने राजा को आशीर्वाद दिया। राजा हिरन को साथ ले, राजधानी की तरफ चल दिया। अच्छाई के उजाले ने बुराई के अंधेरे का अंत कर दिया था।

काम बढ़ावा कौन

दूसरा विश्व युद्ध पूरी तेजी पर था। दोनों पक्ष सब कुछ दांव पर लगाए हुए थे। उन दिनों इंग्लैंड के प्रधान मंत्री चर्चिल थे। उन्होंने सेनापति मांटगुमरी को संदेश भिजवाया, "कल रात बारह बजे एक आवश्यक बैठक में शामिल हों।"

मांटगुमरी का उत्तर मिला—"क्षमा करें, बैठक में नहीं आ सकता, वह मेरे सोने का समय है।"

सेनापति मांटगुमरी लड़ाई के मैदान में ही बड़े आराम से एक ट्रक में सोया करते थे। घड़ी देखकर नौ बजे अपने ट्रक में पहुंच जाते। कपड़े बदलते, एक प्याला चाय पीते, फिर लेटकर थोड़ी देर कोई पुस्तक पढ़ते। कुछ देर बाद नींद लेने लगते। सुबह-सवेरे पांच बजे उठ बैठते। झटपट तैयार होते। ठीक सात बजते और वह अपने दफ्तर में आ जाते। उनके ट्रक से कुछ दूरी पर गोले फटते रहते, पर वह सोते, तो सोए ही रहते।

क्या इतने बड़े सेनापति से हमारी जिम्मेदारी अधिक है? असल में हममें से अनेक ऐसे हैं, जो काम नहीं जानते। कई बार मां अपनी फूहड़ बेटी के

खेल खेल में

राजा क्षुप और ब्राह्मण दधीच पुराने मित्र थे। बातों-ही-बातों में एक दिन दोनों में बहस छिड़ गई। दोनों अपने को श्रेष्ठ बता रहे थे। राजा क्षुप ने कहा—"राजा में आठ लोक-पालों की शक्ति होती है। राजा को ईश्वर का स्वरूप माना जाता है। इसलिए मैं तुम्हारा पूज्य हूं।"

बहुत समय से चला आया ब्राह्मण का महत्व घट जाए, दधीच यह सहन न कर सके। क्रोध में आपा खो बैठे। उन्होंने राजा के सिर पर एक जोरदार मुक्का जड़ दिया। लेकिन क्षुप भी कम थोड़े ही थे। राज-शक्ति का मद उनमें था। झट से दधीच पर वज्र का वार किया। चोट खा, दधीच धरती पर लुढ़क गए। उन्होंने शुक्राचार्य को पुकारा। शुक्राचार्य दधीच की सहायता को तुरंत पहुंच गए। उनके उपचार से दधीच स्वस्थ हो गए।

मुक्के के बदले वज्र मारकर भी क्षुप शांत न हुए। शुक्राचार्य ने समझाया। क्षुप बोले—"मैं इ[illegible] लेकर ही रहूंगा।"

राजा का अहंकार तोड़ने के लिए [illegible] को मृत संजीवन मंत्र दे दिया। अब [illegible] कर सकता था। मंत्र पा, दधीच ने

से जोरदार प्रहार किया। क्षुप ने भी क्रोध में भरकर पूरी ताकत से दधीच की छाती पर वज्र दे मारा। लेकिन दधीच का कुछ भी नहीं बिगड़ा।

राजा क्षुप ने विष्णु की आराधना की। विष्णु प्रसन्न हुए। राजा क्षुप ने उनसे कहा—"दधीच मेरा मित्र था। उसने बुरी तरह मेरा अपमान किया। पांव से प्रहार किया मुझ पर। शुक्राचार्य से मंत्र पाकर, अब वह किसी से नहीं डरता। भगवन्, एक बार मुझे विजयी बनाइए।"

विष्णु बोले—"राजन, शिव का भक्त है दधीच। तुमने उससे लड़ाई ली है, उससे तुम कैसे जीतोगे ? फिर भी मैं प्रयत्न करके देखता हूं।" विष्णु ने ब्राह्मण का रूप धारण किया। दधीच के आश्रम में जा पहुंचे। बोले—"मैं एक वर चाहता हूं। आशा है, निराश न करोगे।"

दधीच बोले—"मैं आपको पहचान रहा हूं। आप क्या चाहते हैं, यह भी जानता हूं। यह वेश छोड़, आप अपने रूप में आ जाइए।"

विष्णु बोले—"दधीच, यह सही है कि तुम्हें किसी का डर नहीं, पर एक बार सभा में कह दो, तुम राजा क्षुप से डरते हो।"

भगवान विष्णु ने कई तरह की माया दिखाई, पर दधीच टस से मस न हुए। उन्हें कोई भय न था। तभी दधीच ने देखा, सामने शिव खड़े हैं। वह उनके चरणों में झुक गए। शिव ने उन्हें उठाया और आशीर्वाद दिया। क्षण-भर में ही राजा क्षुप भी वहां उपस्थित हो गए। अब शिव, शिव न थे, विष्णु ही थे। विष्णु बोले—"बातों-ही-बातों में

तुम दोनों में ऐसी खटकी, एक-दूसरे के प्राण लेने पर तुल गए। मित्रता में ही तुम्हारा कल्याण है।" दोनों फिर मित्र बन गए।

ऐसा ही कुछ आज के खेलों में होता है। खिलाड़ी कुछ देर के लिए एक-दूसरे को पछाड़ देना चाहते हैं, पर खेल खत्म और फिर मित्रता।

काम बढ़ावा कौन

दूसरा विश्व युद्ध पूरी तेजी पर था। दोनों पक्ष सब कुछ दांव पर लगाए हुए थे। उन दिनों इंग्लैंड के प्रधान मंत्री चर्चिल थे। उन्होंने सेनापति मांटगुमरी को संदेश भिजवाया, "कल रात बारह बजे एक आवश्यक बैठक में शामिल हों।"

मांटगुमरी का उत्तर मिला—"क्षमा करें, बैठक में नहीं आ सकता, वह मेरे सोने का समय है।"

सेनापति मांटगुमरी लड़ाई के मैदान में ही बड़े आराम से एक ट्रक में सोया करते थे। घड़ी देखकर नौ बजे अपने ट्रक में पहुंच जाते। कपड़े बदलते, एक प्याला चाय पीते, फिर लेटकर थोड़ी देर कोई पुस्तक पढ़ते। कुछ देर बाद नींद लेने लगते। सुबह-सवेरे पांच बजे उठ बैठते। झटपट तैयार होते। ठीक सात बजते और वह अपने दफ्तर में आ जाते। उनके ट्रक से कुछ दूरी पर गोले फटते रहते, पर वह सोते, तो सोए ही रहते।

क्या इतने बड़े सेनापति से हमारी जिम्मेदारी अधिक है? असल में हममें से अनेक ऐसे हैं, जो काम निपटाना नहीं जानते। कई बार मां अपनी फूहड़ बेटी के

लिए कहा करती है–"कैसी काम बढ़ावा बेटी मेरे पल्ले पड़ी।"

अपने से पूछिए–कहीं आप भी काम बढ़ावा तो नहीं। यदि उत्तर 'हां' है, तो इससे छुटकारा पाने का प्रण लीजिए।

खोटी मोटी

एक थी मोटी, एक थी खोटी। दोनों बहनें थीं। न मां, न बाप—न कोई काम-धंधा। जैसे-तैसे गुजारा कर रही थीं। खोटी थी छोटी, इसलिए सारा काम-काज उसे निपटाना पड़ता। मोटी बड़ी थी—पत्ता तक न तोड़ती। हां, दिन-रात खाट पर पसरी रहती। खोटी रोटी पकाती, मोटी गपागप खा जाती। बचे-खुचे से खोटी अपना काम चलाती।

एक दिन सुबह सवेरे खोटी बाग में गई। साग तोड़ने लगी। तभी वहां सुनाई दिया—"म्याऊं-म्याऊं, रोटी पकाऊं—खा न पाऊं, म्याऊं-म्याऊं।" एक बार, दो बार, तीन बार यह कहती एक बिल्ली उछल-कूद करने लगी। खोटी को आया गुस्सा। पास पड़ी सोटी उठाई, दे मारी—"ले, नाश-पिट्टी! मेरी बहन की बुराई करती है।"

निशाना ठीक बैठा। बिल्ली बिलबिला गई। तभी ऐसा हुआ, जिस पर कभी कोई विश्वास न करे। बिल्ली तो गायब—और मुसकराती-खिलखिलाती एक सुंदर लड़की वहां मौजूद। खोटी हुई हैरान-परेशान, पर लड़की आगे बढ़ आई। उसने खोटी का हाथ थाम लिया। बोली—"हम तुम आज से हुईं सहेली। मैं धरती पर घूमने आई थी। एक जादूगर ने मुझे बिल्ली बना दिया। तुमने मेरी छड़ी को छुआ दिया,

मैं अपने असली रूप में आ गई।"

खोटी यकीन करे तो कैसे करे ! पूछने लगी—"परी के हाथ में जादुई छड़ी होती है। कहां है तुम्हारी छड़ी ?"

"अरे, सखी ! जो फेंककर मारी थी, वही थी मेरी छड़ी ! मैंने पेड़ की जड़ में रख दी थी, इसीलिए जादूगर का असर मुझ पर हो गया।" परी तेजी से गई और उस सोटी को उठा लाई। उसके हाथ में लेते ही वह चांदी-सी चमकने लगी। परी बहुत खुश थी। खोटी का हाथ पकड़कर कहने लगी—"अब तो तुरंत मैं परी लोक जाऊंगी। सभी मेरी राह देख रहे होंगे। हां, पंद्रह दिन बाद, इसी समय, इसी दिन, यहीं मिलूंगी। आना जरूर प्यारी सखी।"

"और परी तो यह जा, वह जा। पल्लू में साग भरे, खोटी ने घर की राह पकड़ी। उसने जो देखा—उसे सच माने या झूठ !

खैर, चौदह दिन जैसे-तैसे बीते। पंद्रहवें दिन खोटी वहीं आ खड़ी हुई। पर वहां न परी, न कोई और। लेकिन ठीक समय पर परी वहां आ गई। उसके लिए एक जोड़ा कपड़े लाई। बोली—"सखी, यह मेरी सौगात लो।" खोटी तो खुश होकर किलक उठी। उसने झटपट वे ही कपड़े पहन डाले। एकदम उसी के नाप के थे कपड़े। अब वह चाहे कि उड़कर मोटी दीदी के पास पहुंचे और कपड़े दिखाए। लेकिन परी उसे यों छोड़ने वाली न थी। वह काफी देर खेलती रही, नाचती रही और फिर दोनों ने अगली बार मिलने का वायदा करके विदा ली।

खोटी घर पहुंची। मोटी ने उसे देखा, तो भौंचक्की रह गई। उसने भी बरसों से नए कपड़े पहने न थे। झट से उतरवा लिए। खुद पहनने लगी। परी लोक के कपड़े थे आखिर। उसके शरीर में भी एकदम फिट आए। अब भला मोटी उन्हें क्यों उतारती। बोली—"अपनी सहेली से और ले आना अपने लिए।"

खोटी मन मसोस कर रह गई। फिर पखवाड़ा बीता। खोटी की मुलाकात परी से हुई। उन्होंने एक-दूसरे से कुछ घर की, कुछ जग की, कही-सुनी। परी ने देखा, उसकी सहेली आज भी चीथड़ों में है। उसने उससे अगली बार नए कपड़े देने का वायदा किया। कुछ घंटे हंसी-खुशी में बीता, परी चली गई। खोटी को जैसे पंख दे गई। उसके पांव अब धरती पर न पड़ते।

वे दोनों मिलती-जुलती रहीं। समय बीतता गया। परी खोटी के बारे में सब कुछ जान गई थी। खोटी ने भी परी के बारे में बहुत कुछ जान लिया था, पर परी ने उसे मना कर दिया था कि किसी को कुछ न बताए। उसने खोटी को मिट्टी के बर्तन बनाने सिखाए।

खोटी ने ऐसे बर्तन बनाए, हाथों-हाथ बिक गए। पैसे भी अच्छे मिले। अब तो मोटी भी इस काम में रुचि लेने लगी। यों धीरे-धीरे उनके सुंदर बर्तन चारों तरफ पसंद किए जाने लगे। उनकी हालत भी सुधरती चली गई।

एक दिन एक राजकुमार उधर से निकला। उसने भी खोटी-मोटी के बर्तन देखे। वह बहुत खुश हुआ। वह दोनों बहनों को अपने साथ लिवा ले गया। महल में पहुंच, राज-

कुमार ने खोटी से और मंत्री के बेटे ने मोटी से ब्याह कर लिया। मोटी अब पहले जैसी मोटी भी न रह गई थी।

लेकिन एक गड़बड़ हो गई। परी बाग में आई। राह देखती रही, देखती रही, पर खोटी वहां न पहुंची। खोटी उसके बारे में राजकुमार को कुछ बताना नहीं चाहती थी। बरसों यों ही निकल गए। दोनों बहनें सुखी थीं–बहुत सुखी। परी अपनी सहेली से मिलने आया करती–उसे न पाकर वह मोरनी बन जाती। इधर-उधर खोटी को ढूंढ़ती हुई फुदकती। कभी नाचती और–केऊ, केऊ–'कहां हो, कहां हो' पुकारा करती।

जिस तरह खोटी-मोटी के दिन बदले, इसी तरह सबके दिन फिरें।

शहद लगी घास

बहुत पहले वाराणसी के राजा ब्रह्मदत्त थे। उनके महल के आसपास सुंदर-सलोना बाग था। बाग में तरह-तरह के फूल थे। रसदार फलों के पेड़ थे। सबसे बढ़कर थी वहां की हरी-हरी घास। चलते, तो लगता ईरानी गलीचे पर चल रहे हों। बाग की देखभाल भी खूब होती थी।

बाग की सुरक्षा रहे, इसलिए ऊंची दीवार से घेरा गया था। पर बरसात के मौसम में दीवार में, एक जगह दरार पड़ गई। उसी से चुपके-चुपके एक हिरन भीतर घुस आता। मजे में कोमल दूब चरता। माली आए और देखे, उससे पहले ही छूमंतर हो लेता। माली समझ न पाता कि घास को कौन नुकसान पहुंचा जाता है।

चांदनी रात में माली जागता रहा, जागता रहा। हिरन आया। स्वाद ले-लेकर दूब खाने लगा। धीरे-धीरे माली उसकी ओर गया, पर हिरन तो यह जा और वह जा।

सप्ताह में एक बार बाग के बारे में राजा पूछताछ किया करते थे।

इस बार पूछा, तो माली बोला—"महाराज, सब ठीक-

ठाक है। मौसमी फल-फूल सभी कुछ आपके बाग में हैं। पर एक हिरन रोज घास चरने लगा है।"

"तुम उसे पकड़ते क्यों नहीं ? कैसा है वह हिरन ?"—राजा ने पूछा।

माली बोला—"वह सुनहरा हिरन है। चमचम करती आंखें हैं उसकी। कैसी भी सावधानी रखूं, वह पकड़ में नहीं आता।"

"प्रयत्न से क्या नहीं हो सकता। उसे पकड़कर मेरे पास हाजिर करो।"—राजा ने आदेश दिया।

माली सोच में पड़ गया। उसने कई मटके शहद मंगवाया। हरी घास पर शहद छिड़क दिया। अब तो हिरन और भी देर तक बाग में घास चरने लगा।

धीरे-धीरे माली भी शहद लगी घास लेकर उसके पास जाने लगा। शुरू में तो हिरन चौकन्ना रहता, पर फिर वह माली के हाथ से घास खाने लगा।

अब माली ने नई चाल चली।

उसने राजमहल तक चटाइयां बिछा दीं। उन पर मीठी घास छितरा दी।

हिरन आया। माली ने उसकी ओर घास बढ़ानी शुरू की। कभी वह माली के हाथ की घास खाता, कभी नीचे की।

इसी तरह खिलाते-खिलाते माली उसे राजमहल की ओर ले आया।

दो नौकर पहले से ही तैनात थे। उन्होंने झट से फाटक बंद कर दिया।

हिरन को अब अपनी भूल मालूम हुई। राजा ने उसे चिड़ियाघर के बाड़े में रखवा दिया। जीभ के स्वाद ने हिरन को कैद में डाल दिया।

हम अच्छी चीजें खाएं, सेहत बनाएं। पर जीभ के गुलाम न बनें। मीठे स्वाद में ही बढ़ते-बढ़ते रोग के घेरे में न आ जाएं।

पैसा नहीं चढ़ाया

एक ब्राह्मण था। रोज गंगा की पूजा करने जाता। उसके जूते फट गए थे। गंगा की ओर जा रहा था, सोचा–'क्यों न नए जूते ले लूं।' जा पहुंचा रैदास की कुटिया पर। रैदास ने उसे नए जूते दिये। पता चला, पंडित जी गंगा पूजा को जा रहे हैं। रैदास बोले–"कृपा करके यह ढबली पैसा गंगा माई को चढ़ा देना।"

ब्राह्मण ने पैसा ले लिया। गंगा तट पर पहुंचा। फिर सोचने लगा कि हरिजन का दिया पैसा गंगाजी में कैसे चढ़ाए। पैसा नहीं चढ़ाया। वहां से लौट चला, अरे, यह क्या ? राह में धुंध ही धुंध। कुछ दिखाई ही न दे।

ब्राह्मण लौट पड़ा। फिर गंगा की पूजा की। रैदास का दिया पैसा चढा दिया। तभी छमाछम करती गंगाजी वहां आईं। सोने का कंगन ब्राह्मण को दिया। बोलीं–"इसे भक्त रैदास को दे देना।"

ब्राह्मण ने हाथ जोड़े। झटपट लौट पड़ा। अब कहीं धुंध न थी। पर ब्राह्मण के मन में लालच आ गया–'कंगन रैदास को नहीं दूंगा। उसे क्या पता चलेगा ?' बस, उसने दूसरी राह पकड़ ली। यह क्या ! कुछ दूरी पर रैदास की कुटी नजर आई।

पंडित जी ने फिर रास्ता बदला, लेकिन उस रास्ते में भी रैदास की कुटिया आ गई। पंडित जी समझ गए, कंगन जिसका है, उसे ही देना होगा। सीधी राह पकड़ी। रैदास को कंगन ले जाकर दिया। बोले–"भइया, तू गंगा माई का सच्चा भक्त है।"

रथ राख बना

एक ही पेड़ की शाखाएं। कौरव और पांडव—एक दूसरे के विरोध में खड़े हो गए। एक शर्त के साथ पांडवों का राज्य कौरवों के हाथ आ गया। पांडवों ने शर्त पूरी कर दिखाई—पर कौरव राज्य लौटाने को तैयार ही न हों। बातचीत और मान-मनौवल सब बेकार। श्रीकृष्ण बीच में पड़े—"बस, पांच गांव पांडवों को दे दो। बाकी राज्य कौरवों के पास ही रहे।" पर दुर्योधन इतने पर भी कहां मानने वाला! अंत में एक ही रास्ता बचा—युद्ध हो और युद्ध से निर्णय हो।

श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा की—शस्त्र नहीं उठाऊंगा, केवल सारथी रहूंगा। युद्ध हुआ—और ऐसा जमकर हुआ कि दोनों पक्षों के असंख्य योद्धा मारे गए। धरती खून से रंग गई।

महाभारत का युद्ध खत्म हुआ। पांडव जीत गए। उन दिनों रिवाज था—विजेता हारे हुए शत्रु के शिविर में जाएं। एक रात वहां बिताएं। शंख बजाते हुए सारे पांडव दुर्योधन के शिविर में पहुंचे। श्रीकृष्ण भी साथ थे। शिविर में पहुंच, श्रीकृष्ण बोले—"अर्जुन, अपना धनुष लेकर रथ से नीचे उतर आओ।" अर्जुन को अटपटा-सा लगा, पर वह नीचे उतर गया। फिर श्रीकृष्ण ने घोड़ों की लगाम छोड़ दी। सोने के

उस रथ से वह भी नीचे उतर आए। उनका नीचे उतरना था कि रथ धू-धू करके जल उठा।

सभी पांडव हैरान-परेशान ! अर्जुन की आंखों में आंसू भर आए। बोला—"कृष्ण, जिस रथ पर चढ़कर मैंने शत्रुओं से लोहा लिया, वह देखते ही देखते यों राख की ढेरी बन गया ! यह क्यों कर हुआ ?"

श्रीकृष्ण ने कहा—"अर्जुन, अब इस रथ का काम पूरा हो चुका था। इस पर भयंकर शस्त्रों के वार होते रहे। पहले ही यह जल गया होता, पर मैं इस पर सवार था।"

संसार में जो है, जहां है—किसी कारण से है। हेतु पूरा हुआ, खेल खत्म। श्रीकृष्ण का अवतार हुआ—धर्म की स्थापना के लिए, सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के नाश के लिए।

सवा सौ साल तक कृष्ण की जीवन-लीला चली। जन्म के शुरू से ही अजब-अनोखी घटनाएं घटने लगीं। पहले दिन से ही कंस उन्हें जीवित नहीं देखना चाहता था। न जाने कितने राक्षस भेजे ! कैसे-कैसे षड्यंत्र रचता रहा। कृष्ण की बाल-लीलाओं का कैसा सुंदर वर्णन सूरदास ने किया है। मीराबाई के भजन आज भी घर-घर में गूंजते हैं। कवियों और लेखकों ने कितने पोथे उनकी चर्चा में लिख डाले। पर फिर भी वे उन्हें पूरी तरह न जान सके।

कबूतर का घोंसला

एक था कबूतर, एक कबूतरी। उस जमाने में कबूतर अपना घोंसला नहीं बनाता था। कबूतरी ने जमीन पर ही अंडे दे दिए। एक बूढी लोमड़ी दबे पांव उधर से आई। सारे अंडे उठा ले गई। कबूतर-कबूतरी देखते रह गए।

कबूतर एक पेड़ की शाख पर जा बैठा। दुखी था, बहुत दुखी। आखिर में उसने तय किया कि वह पेड़ पर घोंसला बनाएगा। उसने कुछ तिनके जोड़े, पर घोंसला बनाना तो जानता न था। उसने जंगल की चिड़ियों को बुलाया कि उसे घोंसला बनाना सिखा दें।

चिड़ियां आईं। कबूतर का घोंसला बनाने लगीं। पर उन्होंने कुछ ही तिनके रखे थे कि कबूतर ने रोक दिया। "मैं जान गया, मैं खुद बना लूंगा"—उसने चिल्लाकर कहा।

कबूतर पेड़ के चक्कर काटता रहा। एक तिनका यहां रखता, तो दूसरा वहां। पर वह घोंसला न बना सका। अब करे तो क्या करे? उसने फिर दूसरी चिड़ियों को बुलाया। वे आईं। आधा घोंसला भी न बना पाई थीं कि कबूतर ने फिर कहा—"मैं घोंसला बना लूंगा।"

चिड़ियों को उसका बड़बोलापन ठीक न लगा। और वहां से नौ दो ग्यारह हो गईं।

कबूतर ने फिर काम शुरू किया। मगर घोंसला न बना। उसने तीसरी बार चिड़ियों को बुलाया, परंतु अब की बार वे नहीं आईं। भला, उसकी मदद क्यों करें, जो घमंडी है। अनाड़ी होकर भी समझता है कि उसे सब कुछ आता है। न जाने कितने बरस गुजर गए, आज तक भी कबूतर को बढ़िया घोंसला बनाना नहीं आया।

बरस रहे फूल

मेरे घर के आगे कुछ खाली जगह है, छोटा पार्क जैसा। उसमें हरसिंगार के पांच पेड़ लगे हैं। किसने लगाए, नहीं मालूम। दो पेड़ बड़े-बड़े हैं, तीन छोटे-छोटे, पर हरे-भरे। ठंडा मौसम हो, चांदनी रात हो—पेड़ों के नीचे खड़े हों। धीरे-धीरे सफेद फूल गिरते रहते हैं। लगता है, फूलों से नहा रहे हैं। आसपास सब महकता है, खूब मीठी-सी खुशबू से।

जाड़े की रात—नींद अचानक टूट गई। धीरे-से बाहर निकल आया। सामने निगाह गई, चौंक पड़ा। तीन छोटे-छोटे पेड़ वहां थे ही नहीं। किससे कहूं, क्या कहूं! कानों सुनी नहीं, आंखों देखी पर भरोसा करना चाहिए। मैं अपनी आंखों से ही देख रहा था—तभी रुनझुन-रुनझुन रुनझुन-रुनझुन, झनन-झनन-झन की आवाज सुनी। अचानक मानो किसी ने मेरी पलकों को मूंद लिया। फिर खोलीं, तो देखता हूं कि छोटे पेड़ अपनी जगह पर हैं। पेड़ों के पास खिसक आया। वे पसीने में भीगे हुए हैं। शायद तेजी से दौड़कर आए—और अपनी जगह आ जमे।

"कहां गए थे?"—मैंने पूछा। कोई उत्तर नहीं मिला। फिर ज़रा जोर से पूछा तब भी कोई न बोला। तीसरी बार

फिर कड़ककर पूछा, तो उत्तर मिला—हम ऊपर अपने लोक में जाया करते है। जो कुछ यहां खड़े-खड़े देखते हैं, उसी के बारे में बताया करते हैं वहां।"

"तो क्या तुम जासूस हो ?"

"नहीं, नहीं परीलोक के दूत हैं, राजदूत समझ लो चाहे।"

"झूठ, बिल्कुल झूठे हो। परीलोक की पहचान दिखाओ।"

एक पेड़ दूसरे की ओर झुका। उन्होंने कुछ कानाफूसी की। झट-से एक रूमाल मेरे ऊपर आ गिरा। रंग-बिरंगा रुमाल, मानो इत्र में डूबा हो।

तभी आवाज आई—"सिर्फ तुम्हारे लिए है। दुनिया भर में ढोल न पीटना।"

मैं घर में भीतर की ओर लपका कि सबको जगाऊं। बताऊं कि ये मामूली पेड़ नहीं हैं। भीतर आया, इसको-उसको जगाने लगा। पर कोई जाग कर ही न दे।

थोड़ी देर में चिड़ियां चहक उठीं। सब सोते से जाग गए। मैंने रात की घटना सुनाई। कोई विश्वास ही न करे। मेरे पास तो प्रमाण था, पर देखा तो महकता रूमाल न जाने कहां गायब हो गया। पेड़ों की बात नहीं मानी, शायद इसीलिए छूमंतर हो गया।

कमल की भेंट

एक शिकारी था। अपनी पत्नी के साथ नगर के बाहर रहा करता। जैसे-तैसे अपना गुजारा चलाता। एक बार उस क्षेत्र में भारी अकाल पड़ा। अन्न के दाने-दाने को लोग तरसने लगे। शिकारी ने बहुतेरा चाहा, पर कहीं कोई रोजगार-धंधा न मिला। पति-पत्नी भूखों ही मर जाएं—ऐसी नौबत आ गई। तब उसने सोचा—जंगल में जाकर कुछ कंद-मूल ले आएं।

शिकारी अपनी पत्नी के साथ वन में गया। वे इधर-उधर काफी भटकते रहे। पर खाने लायक कुछ भी उनके हाथ न लगा। भुक्खड़ लोगों ने पहले ही हर कहीं जमीन खोद डाली थी। कहीं भी कंद-मूल न छोड़े थे। घूमते-खोजते दोपहर हो गई।

अचानक उन्हें एक सरोवर दीखा। सरोवर साफ जल से भरा था। उसमें सुंदर-सुंदर कमल भी खिले थे। यह देख, शिकारी फूला न समाया। दोनों ने जी भरकर पानी पिया। फिर वह पत्नी से बोला—"देखो, ये कैसे बढ़िया कमल हैं। इन्हें तोड़कर ले चलते हैं। नगर में इन्हें बेच देंगे। जो भी मिलेगा, उससे एक-दो दिन तो पेट भरने का इंतजाम हो ही जाएगा।" दोनों ने झटाझट

कमल के ढेर सारे फूल तोड़ लिए। जा पहुंचे किसी नगर में।

गली-गली में आवाज लगाते फिरे। पर कोई ग्राहक उन्हें नहीं टकराया। सांझ ढलने लगी। शिकारी को चिंता हुई—यहां अनजाने नगर में किसकी छत के नीचे शरण लें। तभी उसे एक सुंदर भवन दिखाई दिया। उसके आंगन में पूजा हो रही थी। घर एक वैश्य का था। वह भगवान विष्णु की पूजा कर रहा था। वहां पूजा की सभी सामग्री थी, कमी थी तो कमल के फूलों की। वैश्य कमल के सारे फूल मुंह मांगे दामों पर खरीदने को तैयार हो गया। लेकिन वहां सब कुछ देखकर तो शिकारी हतप्रभ हो उठा। उसने कहा—"ये फूल बेचूंगा नहीं। देव-पूजा में मेरी ओर से इन्हें भेंट समझ लें।"

उसने सारे कमल उस गृह-स्वामी को सौंप दिए। कुतूहल और श्रद्धा के साथ पूजा होती देखने लगा। यह देख, भगवान विष्णु शिकारी से बड़े प्रसन्न हुए। पूजा-अर्चन होने के बाद सभी को प्रसाद बांटा गया। शिकारी और उसकी पत्नी ने भी प्रसाद पाया। उनकी भूख मिट गई। उसी घर में रात को ठहरने का आसरा भी मिल गया। अगले दिन सवेरे उन्होंने अपनी राह ली।

अब शिकारी रोज कमल के फूल ले आता। किसी मंदिर के द्वार पर बैठ जाता। उसका गुजारा चलने लगा। समय बीतता रहा। शिकारी और उसकी पत्नी बूढ़े हो गए। फिर वे दुनिया से चल बसे। अगले जन्म में शिकारी तो रथंतर नाम का राजा बना। उसकी पत्नी रानी बनी।

विष्णु को कमल भेंट करने से यह पुण्य मिला।

भगवान विष्णु के चार हाथों में से एक में कमल रहता है। विष्णु, लक्ष्मी, गणेश तथा अन्य देवताओं को कमल प्रिय है। कीचड़ में खिलने वाला कमल—उसकी गंध से भारत की संस्कृति महक रही है। माटी में मनभावन गंध होती है।

ooo

मुद्रक : रुचिका प्रिण्टर्स, नवीन शाहदरा, दिल्ली-110032 98102